हिंसा और अहिंसा

(धर्मशास्त्रीय एवं बौद्धिक तर्क के प्रकाश में)

(Violence & Non-Violence in the light of theological and intellectual reasoning)

एस० कौसर लईक़

विषय-सूची

‘अत्यन्त कृपाशील, दयावान ईश्वर के नाम से।’

दो शब्द

‘हिंसा-अहिंसा’ ये ऐसे शब्द हैं जो ज़बान पर आते ही इनकी एक परिकल्पना मस्तिष्क में आती है। इनसान हिंसा को बुरा और घृणित समझता है और अहिंसा को अच्छा और अभीष्ट। मगर यह भी एक सत्य है कि इन शब्दों की व्याख्या लोग अपने-अपने तौर पर अलग-अलग करते हैं। हमारे देश भारत को अंग्रेज़ों से स्वतंत्रता दिलाने के लिए जो लोग संघर्ष और परिश्रम कर रहे थे उनको अंग्रेज़ों ने हिंसावादी कहा जबकि इन ही मानुभावों को भारतीय लोगों ने अहिंसावादी ठहराया। ऐसे किसी शब्द या शब्दों को पूरी सत्यता के साथ तथ्यपरक नाम देना बड़ा मुश्किल काम है। सत्य की इस नीति को ग्रहण करने में बहुत-सी चीज़ें बाधक बन जाती हैं और कई बार मनुष्य को इसका पता भी नहीं चलता। यही कारण है कि राजनीतिक एवं अन्य उद्देश्यों से लोग अपने विरोधियों को इन शब्दों के द्वारा ख़ूब निशाना बनाते और अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहते हैं।

जो सत्यप्रिय और तथ्य-प्रेमी लोग हैं वे इस उलझन से छुटकारा पाने के लिए व्याकुल रहते हैं, मगर उन्हें कोई मार्गदर्शन नहीं मिल पाता। इस्लाम और अन्य धर्मों के विद्वान आदरणीय एस॰ कौसर लईक़ जी ने गहन अध्ययन और कड़े परिश्रम के बाद यह पुस्तक तैयार की है, जो ऐसी बेचैन आत्माओं को अवश्य ही सहारा देगी और उनका मार्गदर्शन करेगी। उन्होंने धार्मिक ग्रंथों, बौद्धिक प्रमाणों और तार्किक तथ्यों के साथ हिंसा-अहिंसा के वास्तविक अर्थों को अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से उजागर किया है।

आशा है यह पुस्तक न केवल यह कि हिंसा-अहिंसा के बारे में विस्तृत जानकारी देगी, बल्कि मानव को हिंसा की नीति त्यागने और अहिंसा का मार्ग ग्रहण करने के लिए प्रेरित करेगी।

हमारा प्रयास रहा है कि इस पुस्तक में प्रूफ़ आदि की कोई त्रुटि न रह जाए और धार्मिक ग्रन्थों के श्लोक आदि को भी भली-भाँति देखने का प्रयास किया गया है, फिर भी अगर पाठकों को कोई त्रुटि नज़र आए तो कृपया वे हमें अवश्य सूचित करें, इसके लिए हम उनके बहुत आभारी होंगे। धन्यवाद

इस पुस्तक के बारे में पाठकों के विचारों और सुझावों का हार्दिक स्वागत है।

—प्रकाशक

हिंसा और अहिंसा

हिंसा एवं अहिंसा का वास्तविक अभिप्राय

हिंसा या अहिंसा क्या है? इस सन्दर्भ में अनेक विद्वानों और धर्मशास्त्रों ने अपने-अपने दृष्टिकोण और सिद्धान्तों के आधार पर इनकी विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। वैसे अहिंसा का शब्दानुसारी अर्थ है—'हिंसा का न होना'। 'अहिंसा' हिंसा का विरुद्धार्थी शब्द है। अर्थात् जहाँ हिंसा होगी वहाँ अहिंसा न होगी और जहाँ अहिंसा होगी वहाँ हिंसा का अस्तित्व न होगा। वैसे सामान्य रूप से अहिंसा से अभिप्राय किसी भी प्राणी या जीव की हत्या या क़त्ल करने से बचे रहने से लिया जाता है। इसी प्रकार किसी भी जीव या प्राणी की हत्या या क़त्ल करने को हिंसा कहा जाता है। लेकिन भारतीय मनीषियों एवं धर्मशास्त्रों की दृष्टि में अहिंसा एक अत्यन्त व्यापक अर्थ रखती है। महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं—

तत्राहिंसा नाम मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वभूतेषु सर्वदाऽक्लेश जननम्।।

(शाण्डिल्योपनिषद् 1/1/1)

अर्थात् "अहिंसा का तात्पर्य है—मन, वचन, शरीर एवं अपने कार्य के द्वारा किसी भी प्राणी को कभी भी दुख न देना।"

इसी प्रकार योगसूत्र (2/30) के पाँच यमों की व्याख्या करते हुए अहिंसा के सम्बन्ध में श्री व्यास जी लिखते हैं—

"तत्रहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानाम् अनभिद्रोहः।"

अर्थात् सर्वथा और सर्वदा से सभी प्राणियों के प्रति द्रोह का अभाव होना अहिंसा है।

महर्षि व्यास जी ने 'द्रोह का अभाव' के लिए एक शब्द 'अद्रोह' का प्रयोग किया है। 'अद्रोह' 'द्रोह' का विरुद्धार्थी शब्द है। 'द्रोह' एक व्यापक भाव रखने- वाला शब्द है। इसके भावार्थ में समस्त प्रकार के अमानवीय दुर्गुण आते हैं अर्थात् इसके अभिप्राय में वैर, रिपुता, शत्रुता, वैमनस्य, अप्रीति, कटुता, कालुष्य, दुर्भावना, ईर्ष्या, अपरागता, सद्भावहीनता, दौर्मनस्य, विषाक्तता, दुश्मनी, विश्वासघात व बेईमानी इत्यादि सभी भाव आते हैं। अद्रोह में उपरोक्त सभी प्रकार के दुर्गुणों की विलुप्ति पाई जाती है। अतः महर्षि व्यास के कथनानुसार कोई भी व्यक्ति उसी समय अहिंसावादी या अहिंसा-व्रती हो सकता है, जब उसके अन्दर 'अद्रोह' अर्थात् द्रोह के उपरोक्त सभी प्रकार के भावों का अभाव पाया जाए। अन्य समस्त सद्गुणों के अतिरिक्त द्रोह की भावना के न रखने को धर्मग्रन्थों में सनातन धर्म का मूल कहा गया है, क्योंकि द्रोह की भावना हर बुराई का मूल है।

मत्स्यपुराण में कहा गया है—

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया शमः।।
ब्रह्मचर्यं तपः शौचमनुक्रोशं क्षमा धृतिः।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेव दुरासदम्।।
(143/31-32)

अर्थात् "संसार के किसी भी चीज़ के प्रति द्रोह की भावना न रखना, इन्द्रिय निग्रह, जीवों के ऊपर दयाभाव, शान्ति, ब्रह्मचर्य, तपस्या, पवित्रता, करुणा, क्षमा, धैर्य—ये सब सद्गुण उस सनातन धर्म के मूल हैं, जो कठिनाई से प्राप्त करने योग्य होते हैं।"

द्रोह की भावना के अभाव से मनुष्य में दया, करुणा, मैत्रीभाव, प्रेम एवं आत्मीयता अर्थात् तमाम सद्गुणों का जन्म होता है। जब मनुष्य में सद्गुण आ जाते हैं तो सहज ही वह अहिंसावादी हो जाता है और अहिंसा मनुष्य को देवत्व की श्रेणी में पहुँचा देती है। हिंसा या अहिंसा क्या है? इसपर और अधिक विचार करना चाहेंगे।

मनुस्मृति के अध्याय-10 के श्लोक 63 में चारों वर्णों के धर्म का उल्लेख

किया गया है। उसमें 'अहिंसा' को भी एक धर्म कहा गया है। श्लोक के अनुवादक श्री हरगोविन्दशास्त्री जी ने 'अहिंसा' को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"दूसरे को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाना" अहिंसा है।[1] इसी प्रकार पं॰ ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी जी ने अपने अनुवाद में लिखा है—"किसी को भी मन, वाणी और शरीर से दुख न देना[2] अहिंसा है।"

हमारे देश भारत के ऐतिहासिक महापुरुष और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी अहिंसा के परम ध्वजावाहक माने जाते हैं। इनके अहिंसावाद का गहन अध्ययन करने के बाद ज्ञात होता है कि इनकी अहिंसा की अवधारणा भी उपरोक्त अवधारणा के अनुकूल ही थी। गाँधीवाद के शीर्षक से लिखे अपने एक लेख में डॉ॰ पुरुषोत्तम दास जी ने अहिंसा के सन्दर्भ में गाँधी जी की अवधारणा को व्यक्त करते हुए लिखा है—

> "गाँधी जी के अनुसार हिंसा के मूल में स्वार्थ, क्रोध तथा द्वेष है। अहिंसा उसे कहा जाता है जो स्वार्थ, द्वेष और क्रोध पर विजय प्राप्त कर ले।"[3]

हिंसा एवं अहिंसा के प्रकार

उपरोक्त विवरणों से ज्ञात हुआ कि मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट पहुँचाना हिंसा है और इन सबसे बचे रहना अहिंसा है। उपरोक्त वार्ता से यह भी स्पष्ट हुआ कि हिंसात्मक क्रियाएँ तीन रीतियों से होती हैं—मन द्वारा, वचन या वाणी द्वारा और शारीरिक कर्म द्वारा। इन रीतियों के आधार पर हिंसा के तीन प्रकार हुए—मानसिक हिंसा, वाचिक (ज़बान से) हिंसा और शारीरिक हिंसा। इसी तरह इन तीनों प्रकार की हिंसाओं से दूर रहने और परहेज़ करने के आधार पर अहिंसा के भी तीन प्रकार हुए—मानसिक अहिंसा, वाचिक अहिंसा और शारीरिक अहिंसा।

विभिन्न धर्मों के ज्ञाता एवं हिन्दू धर्म-गुरु स्वामी श्री लक्ष्मीशंकराचार्य

---

1. दे॰ मनुस्मृति, पृ॰ 550, प्रका॰ : चौ॰ सं॰ संस्थान, वाराणसी, सं.वि.सं. 2063
2. दे॰ मनुस्मृति, पृ॰ 362, प्रका॰ : रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, संस्करण 6वाँ, सन् 2002
3. सामाजिक विज्ञान, हिन्दी विश्वकोष, खण्ड-4, पृ॰ 80, सं॰ 2011

जी ने भी अपनी एक पुस्तक में लिखा है—"अहिंसा तीन प्रकार की होती है—

(1) किसी को किसी भी प्रकार का कष्ट या दुख देने के लिए न सोचो! यह हुई मन से अहिंसा।

(2) किसी को किसी भी प्रकार का कष्ट या दुख देनेवाली बात न बोलो! यह हुई वचन से अहिंसा।

(3) किसी को किसी भी प्रकार का कष्ट या दुख देने का काम न करो। यह हुई कर्म से अहिंसा! इन्हें मनसा, वाचा, कर्मणा अहिंसा कहते हैं।"

(दे॰ क़ुरआन जीने की कला, चौथा संस्करण, पृ॰ 17)

धर्मशास्त्रों और विद्वानों ने इन तीनों प्रकार की हिंसाओं से बचने और उपरोक्त तीनों प्रकार की अहिंसाओं को अपनाने पर ज़ोर दिया है। आगे उपरोक्त सभी प्रकार की हिंसा और अहिंसा पर कुछ और विस्तार से वार्ता करना चाहेंगे—

मानसिक हिंसा एवं अहिंसा

'मन' के द्वारा किसी की हिंसा करने को 'मानसिक हिंसा' एवं 'मन' से किसी की भी हिंसा न करना 'मानसिक अहिंसा' कहलाती है। जब मनुष्य का अन्तःकरण प्रदूषित और बुद्धि विकृत हो जाती है तो उसके अन्दर अवगुणों का संग्रहण हो जाता है और उसकी दशा क्रूर एवं हिंसक पशुओं जैसी हो जाती है। उसका अन्तर-मन भलाई और बुराई में भेद करने की शक्ति खो चुका होता है। उसका मानस अत्यन्त कुटिल, क्रूर, गर्वोन्मत्त (गर्व से पागल), दंभी, दयाहीन, अत्याचारयुक्त, आततायी, नृशंस व बर्बर हो जाता है। किसी के भी दुख व दर्द की अनुभूति उसमें ख़त्म हो चुकी होती है। उसके मन में अकारण ही दूसरे के प्रति शत्रुता, द्वेष और द्रोह पाया जाता है। वह मन ही मन में दूसरों को क्षति पहुँचाने और विनाश के प्रोग्राम बनाता रहता है। इस प्रकार के दुष्ट लोगों का चरित्र रामायण रामचरित मानस इस प्रकार पेश करती है–

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी।
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।।
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पॉवर पापमय देह धरें मनुजाद।।

(उत्तरकाण्ड, 39/1-4)

अर्थात् "दुष्टों के हृदय में बहुत अधिक संताप रहता है। वे पराई सम्पत्ति (सुख) देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरे की निन्दा सुन पाते

हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं, मानो रास्ते में पड़ी निधि (ख़ज़ाना) पा ली हो। वे काम, क्रोध, मद और लोभ के परायण (अति आसक्त) तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं। वे बिना कारण सब किसी से वैर किया करते हैं। जो भलाई करता है उसके साथ भी बुराई करते हैं। उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है। यानी वे लेने-देने के व्यवहार में झूठ का आश्रय लेकर दूसरों का हक़ मार लेते हैं अथवा झूठी डींग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रुपए ले लिए, करोड़ों का दान कर दिया। इसी प्रकार खाते हैं चने की रोटी और कहते हैं कि आज ख़ूब माल खाकर आए। अथवा चबेना चबाकर रह जाते हैं और कहते हैं हमें बढ़िया भोजन से वैराग्य है इत्यादि। मतलब यह कि वे सभी बातों में झूठ ही बोला करते हैं। जैसे मोर बहुत मीठा बोलता है, परन्तु उसका हृदय ऐसा कठोर होता है कि वह महान विषैले साँपों को भी खा जाता है। वैसे ही वे भी ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं, परन्तु हृदय के बड़े ही निर्दयी होते हैं। वे दूसरों से द्रोह करते हैं और पराई स्त्री, पराए धन तथा पराई निन्दा में आसक्त रहते हैं। वे पामर (नीच, दुष्ट) और पापमय मनुष्य नर शरीर धारण किए हुए राक्षस ही हैं।"[1]

अगर एक शब्द में कहा जाए कि दुष्ट लोग मनुष्य रूप में अधमता और पिशाचिता के मूर्तरूप होते हैं तो अधिक सार्थक होगा। इस प्रकार के अनिष्ट-चिंतक और दुष्ट-प्रवृत्ति एवं भ्रष्ट-बुद्धिवाले व्यक्तियों के लिए वेद (ऋ॰ 1/131/7) और निरुक्ति (10/42) में 'दुर्मतिः' का शब्द प्रयुक्त हुआ है और शक्तिमान एवं ऐश्वर्यशाली परमेश्वर से मानवता के ऐसे शत्रुओं, विद्रोहियों और हिंसकों से अपनी रक्षार्थ प्रार्थना की गई है। इसी प्रकार सामवेद में प्रार्थना की गई है–

मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः।। (मं॰सं॰ 1806)

अर्थात् "हे इन्द्र! तू हिंसक शत्रुओं के अधीन हमें मत कर। हमारा नाश करनेवाले के स्वाधीन हमें मत कर।"[2]

1. अनुवाद : श्री पं॰ ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी जी
2. अनुवाद : पद्मभूषण ब्रह्मर्षि श्रीपाद पं॰ दामोदर सातवलेकर जी।

'हिंसक शत्रुओं के अधीन मत कर'—अर्थात् हिंसक मानसिकतावाले लोग, जो सहज ही मानवता के शत्रु होते हैं और जिनका हृदय अति क्रूर एवं पाषाण होता है—ऐसे लोगों को हमारा प्रशासक एवं सत्ताधारी मत बना। वास्तव में इस वैदिक मन्त्र में यह संकेत किया गया है कि मनुष्य को यदि शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त हो जाए और लोग उनके अधीन हो जाएँ तो उन्हें अपने मानस को हिंसक एवं क्रूरता से बचाए रखना है और समस्त मानवता के प्रति उन्हें अहिंसावादी होकर रहना है। उन्हें न्याय, समानता, सत्यनिष्ठा और निर्पेक्षता का दामन किसी भी दशा में नहीं छोड़ना है। उनकी बुद्धि और उनका अन्तःकरण मानवता के प्रति करुणा, दया, प्रेम एवं स्नेह से परिपूर्ण होना चाहिए।

जिन लोगों को सत्ता एवं शक्ति मिली हुई है, उन्हें क़ुरआन में मुस्लिमों को सम्बोधित करके निर्देश दिया गया है कि वे लोगों के अधिकार स्वरूपी धरोहर जो उनको सौंपी गई है उनको भली-भाँति अदा करें और लोगों के बीच न्याय के साथ फ़ैसला करें। क्योंकि न्याय ही है जो व्यक्ति की समानता, सत्यनिष्ठता और निष्पक्षता को व्यक्त करता है। कहा—

> "मुसलमानो! अल्लाह (ईश्वर) तुम्हें आदेश देता है कि अमानतों को अमानतवालों को सौंपो। जब लोगों के बीच फ़ैसला करो तो न्याय के साथ करो।" (क़ुरआन, 4:58)

क़ुरआन में एक और स्थान पर कहा गया—

> "ऐ लोगो! जो ईमान लाए हो, अल्लाह (ईश्वर) के लिए औचित्य पर क़ायम रहनेवाले और न्याय की गवाही देनेवाले बनो। किसी गिरोह की शत्रुता तुमको इतना उत्तेजित न कर दे कि न्याय से फिर जाओ। न्याय करो, यह ईशभक्ति और विनम्रता के अधिक अनुकूल है।" (क़ुरआन, 5:8)

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की जीवनी में यह उल्लेख मिलता है कि पैग़म्बर (सल्ल॰) किसी को भी अपने कर्म एवं वचन से तकलीफ़ पहुँचाने से सदैव बचा करते थे। (दे॰ हदीसशास्त्र : बुख़ारी, अबू दाऊद)

मानसिक हिंसा अत्यन्त दुखद एवं पीड़ादायक होती है। मानसिक हिंसा या मानसिक आघात से उत्पीड़ित को जो मानसिक पीड़ा होती है, वह शस्त्र के प्रहार व आघात से कहीं अधिक कष्टदायक होती है। यही कारण है कि कई बार मानसिक उत्पीड़ित लोग पीड़ा को सहन न कर सकने की स्थिति में आत्महत्या तक कर गुज़रते हैं। भारत के कई समाजों में बहू के द्वारा समुचित दहेज न लेकर आने की स्थिति में लोभी वर पक्ष की ओर से जो मानसिक पीड़ा एवं तकलीफ़ें दी जाती हैं और हिंसात्मक व्यवहार उसके साथ किए जाते हैं, वहाँ शारीरिक और वाचिक हिंसा के माध्यम से मानसिक हिंसा ही प्रभावी रहती है। यही कारण है कि कई बार ग़रीब उत्पीड़ित एवं बेबस बहुएँ आत्महत्या तक कर गुज़रती हैं, क्योंकि मानसिक हिंसा के द्वारा उन्हें जो मानसिक पीड़ा पहुँचाई जाती है उसको बर्दाश्त करने की शक्ति उनके अन्दर नहीं रह जाती। अतः वे अपनी जीवन-लीला को समाप्त कर लेना ही आसान समझती हैं। यद्यपि आत्महत्या करनेवाली बहुएँ अपनी कायरता का ही प्रमाण देती हैं, अन्यथा परिस्थिति से जूझकर जीत जाना ही बहादुरी होती है। इसी प्रकार कभी-कभी पत्नी व पत्नी-पक्ष के द्वारा वर-पक्ष पर या लड़के (वर) पर भी ऐसी मानसिक पीड़ा पहुँचाने के निरन्तर प्रयास किए जाते हैं कि लड़का पीड़ा को बर्दाश्त न कर पाने की दशा में आत्महत्या तक कर लेता है। ऐसी घटनाओं से इतिहास भरा पड़ा है।

यदि गहन विचार किया जाए तो यह ज्ञात होगा कि प्रत्येक आत्महत्या के पीछे वास्तव में मानसिक हिंसा का चरम पर पहुँचा हुआ मानसिक उत्पीड़न ही कारण होता है। वास्तव में व्यक्ति जब अपने को हर ओर से निस्सहाय और निरुपाय पाता है और सहनशक्ति भी जब उसमें ख़त्म हो जाती है तभी वह अपनी जीवन-लीला समाप्त करने की ओर क़दम बढ़ाता है।

आत्महत्या कोई बहादुरी नहीं, निन्दित कर्म है

किन्तु आत्महत्या के सन्दर्भ में कहना चाहेंगे कि आत्महत्या करना कोई बहादुरी का काम नहीं, बल्कि कायरता का प्रमाण देना है। यह जीवन ईश्वर का उपहार और उसका उपकार है। यह उसकी कृपादृष्टि का फल है कि उसने हमें मनुष्य-योनि में जन्म देने का निर्णय किया और यह जीवन मिला।

हमें यह जीवन ईश्वर की कृतज्ञता प्रकट करते हुए जीना चाहिए। आत्महत्या करना ईश्वर के उपहार और उसके उपकार की कृतघ्नता है। धर्मशास्त्र भी इसकी बड़ी निन्दा करते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण (3/44/49) में कहा गया है कि मनुष्य समझता है कि वह मरकर सुकून पा लेता है, किन्तु मरने के बाद व्यक्ति की और ही अधिक दुर्दशा होती है। अग्नि पुराण (158/39-40) में है कि अपना क्रोध, स्नेह या परिभव (हार या पराजय) के कारण उद्बंधन करके मरनेवाली चाहे स्त्री हो या पुरुष एक लाख वर्षों तक अशुचि यानी अशुद्ध व नापाक रहते हैं। वराह पुराण (162/35) कहता है कि आत्महत्या करनेवाले को चिरकाल तक नरक की तकलीफ़ों में रखा जाता है। इस्लाम धर्म में आत्महत्या करने से सख़्ती के साथ रोका गया है। कहा गया कि **'व ला तक़तुलू अन्फ़ुसकुम'** यानी आत्महत्या न करो।" पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने आत्महत्या करनेवालों को हमेशा नरक में रहने का दण्ड सुनाया है और कहा है कि जिसने जिस चीज़ से आत्महत्या की होगी वह सदैव उस चीज़ से अपने-आपपर आघात करता रहेगा। (दे॰ हदीसशास्त्र बुख़ारी, हदीस न॰-5442, हदीसशास्त्र मुस्लिम, हदीस न॰-109) एक घटना का उल्लेख हदीसशास्त्रों (बुख़ारी-3463, मुस्लिम-113) में हुआ है कि एक व्यक्ति का किसी कारण से हाथ ज़ख़्मी हो गया, तो उस ज़ख़्म की पीड़ा से बेचैन होकर उसने अपने उस हाथ को छुरी से काट डाला। इससे उसके उस हाथ से इतना ख़ून बहा कि वह मर गया। इसका उल्लेख करते हुए पैग़म्बर (सल्ल॰) ने अल्लाह का आदेश उस व्यक्ति के सम्बन्ध में सुनाया कि अल्लाह ने उसपर जन्नत हराम कर दी है अर्थात् वह सदैव नरक यानी जहन्नम में रहेगा। इसी प्रकार एक और घटना का उल्लेख हदीसशास्त्र (मुस्लिम) में मिलता है कि आत्महत्या करनेवाले के जनाज़े की नमाज़ पढ़ाने से पैग़म्बर (सल्ल॰) ने मना कर दिया। अतः व्यक्ति को चाहिए कि कितनी ही तकलीफ़ या लौकिक कष्ट हो, सहन कर ले, और आत्महत्या की ओर कदापि क़दम न बढ़ाए।

धीरज और सहनशक्ति से काम लें

फिर दुख और सुख तो धूप-छाँव की तरह होते हैं; ये आते-जाते रहते हैं। व्यास जी ने युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा था—

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम्।।
(शांति॰ 25/23)

अर्थात् "सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख आता है। कोई भी न तो सदा दुख पाता है और न निरन्तर सुख ही प्राप्त करता है।" अतः

सुखं वा यदि वा दुःखं वा यदि वाप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः।।
(शांति॰ 25/26)

अर्थात् "सुख हो या दुख, प्रिय हो अथवा अप्रिय, जब जो कुछ प्राप्त हो, उस समय उसे सहर्ष अपनावे। अपने हृदय से उसके सामने पराजय न स्वीकार करे, (यानी हिम्मत न हारे।)"

क़ुरआन कहता है कि जो धैर्य एवं सब्र से काम लेता है, उसके साथ ईश्वर होता है। कहा गया—**इन्नल्ला-ह मअस्साबिरीन** (2/153, 8/46, 66) अर्थात् "ईश्वर धैर्य रखनेवालों के साथ है।" क़ुरआन समझाता है कि ईश्वर पर भरोसा करना, धैर्य रखना और मूर्खों को क्षमा करना बड़े महानता के काम हैं। (दे॰ 3/186, 31/17, 42/43) अतः व्यक्ति को पूरे धैर्य से काम लेना चाहिए कि इससे हमेशा जीत मिलती है। क़ुरआन (32/24) कहता है कि उनको नेतृत्व तक मिल जाता है।

मानसिक हिंसा के अन्य रूप

(अ) अपमान करना

किसी का अपमान करना भी मानसिक हिंसा के प्रकारों में से एक प्रकार है। यह अपमान चाहे किसी व्यक्ति, वर्ग या समुदाय के प्रति किया जाए या किसी के धर्म या आस्था को ठेस पहुँचाई जाए।

किसी को अपमानित करने के मूल में वास्तव में व्यक्ति के मानस पर आघात करना ही लक्ष्य होता है और यह आघात यदि किसी सज्जन, शिष्ट

और संवेदनशील व्यक्ति पर किया जाए तो यह उसके लिए मौत से भी बदतर होता है। इसी लिए सज्जन एवं उत्तम पुरुष जिस चीज़ से सदैव भय खाते हैं, उसके प्रति महाभारत (5/34/52) में कहा गया है—

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद् भयम्।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात् परं भयम्।।

अर्थात् "अधम पुरुषों को जीविका न होने से भय लगता है, मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को मृत्यु से भय होता है, परन्तु उत्तम पुरुषों को अपमान से ही महान् भय होता है।"

अतः किसी का अपमान करना उसकी हत्या कर देने से भी अधिक दुखदायक होता है। कहा भी गया है—

अवज्ञानं हि लोकेऽस्मिन् मरणादपि गर्हितम्।

"इस संसार में अपमान तो मृत्यु से भी अधिक निन्दित है।"

अतएव सज्जन और शरीफ़ लोगों के लिए अपमान मौत से भी अधिक कष्टदायक होता है। क्योंकि सज्जन एवं श्रेष्ठ अन्तःकरण के लोग अत्यन्त संवेदनशील और प्रतिष्ठा के प्रति अत्यन्त सजग होते हैं। उनके लिए किसी बात के प्रति सादर संकेत और इशारा कर देना ही पर्याप्त होता है। इस तथ्य को विवेकशील न्यायनिष्ठ लोग सहज ही परख लेते हैं। वैसे सभी के लिए आवश्यक है कि यथासम्भव किसी का भी अपमान व तिरस्कार करने से पूरी तरह बचा जाए। विशेषकर सज्जन पुरुषों का अपमान करने से पूरी तरह बचना ही चाहिए कि यह एक बहुत बड़ा पाप और अपराध भी है और तबाही व बरबादी का कारण भी होता है। पद्मपुराण (6/116/16) में कहा गया है कि जहाँ सज्जनों का अपमान होता है वहाँ हमेशा निर्धनता और परेशानी रहती है। महाभारत में है—**योऽवमन्ता स नश्यति** (12/299/26) अर्थात् "अपमान करनेवाले का नाश हो जाता है।" पितामह ब्रह्मा ने ययाति को, जो अभिमान में पड़कर अपमानयुक्त आचरण अपनाए हुए था, समझाते हुए कहा—

नावमान्यास्त्वया राजन्नधमोत्कृष्टतमध्यमाः।।

(महाभा॰ 5/123/17)

"राजन! तुम्हें ऊँचे, नीचे एवं मध्यम वर्ग के लोगों का (अर्थात् किसी का भी) कभी अपमान नहीं करना चाहिए।"

वास्तव में कोई भी व्यक्ति किसी का भी तिरस्कार या अपमान उसी समय करता है, जब उसके हृदय में अपने स्वयं को दूसरे से श्रेष्ठ होने का अभिमान पैदा हो जाता है। यह अभिमान कुल, वंश, जाति, पद, धन सम्पत्ति, ज्ञान तथा रूप-रंग किसी का भी हो सकता है। कुल, वंश, जाति पद, धन-सम्पत्ति, रूप-रंग या ज्ञान का आधिक्य या श्रेष्ठता का प्राप्त होना ईश्वरीय कृपा होती है। किन्तु जब यह अधिकता अभिमान का रूप ले लेती है तो मनुष्य के विनाश का कारण बनकर सामने आती है। इसी लिए सभी धर्मशास्त्रों और महापुरुषों ने अभिमान की सख़्त निन्दा की है। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने कुल, वंश, जाति, रूप-रंग के भेद एवं अभिमान को ख़त्म करते हुए अन्तिम हज के अवसर पर कहा कि ये सब मेरे पैरों के नीचे हैं यानी कि मैं इन सभी भेद-भावों को ख़त्म करता हूँ। समस्त मानवजाति एक ही वंश, कुल और जाति के हैं इस हेतु ईश्वरीय आदेश (क़ुरआन, 49/13) सुनाया कि–

या अय्युहन्नासु इन्ना ख़लक़्नाकुम मिन् ज़करिंव्व उन्सा।।

"लोगो! हमने (यानी ईश्वर ने) तुमको एक पुरुष एक नारि से पैदा किया है।"

यानी कि सभी एक ही नर-नारि की संतान हैं। अतः कोई भी कुल, वंश, जाति से भिन्न नहीं है और न जन्म से पवित्र-अपवित्र। यदि कोई ईश्वर की दृष्टि में अधिक सम्माननीय है तो बताया कि वह कौन है। कहा–

इन्न अक्रमकुम् इंदल्लाहि अत्क़ाकुम।।

(क़ुरआन, 49/13)

"यदि कोई ईश्वर की दृष्टि में श्रेष्ठ है तो वह ईशपरायण एवं सुचरित्र लोग हैं।"

ईश्वर की दृष्टि में सुचरित्र और ईशपरायण कौन हैं? इस तथ्य को ईश्वर ही जानता है। यदि कोई व्यक्ति अपने-आपको अधिक ईशपरायण होने और

ुचरित्र होने का दावा करता है, तो वह अहंकारी और पाखण्डी है। क्योंकि ेष्ठ एवं महान लोग अपनी महानता और श्रेष्ठता का दावा नहीं किया करते।

अभिमानी, पाखण्डी और दूसरों को कमतर समझनेवाले दुष्टों के सम्बन्ध ं ईशदूत मुहम्मद (सल्ल०) ने कहा—

अ-ला उख़्बिरुकुम् बिअह्लिन्नारि कुल्लु उतुल्लिन् जव्वाज़िन् मुस्तक्बिर।। (हदीस : बुख़ारी-6071)

"क्या मैं तुम्हें नरकाग्नि में डाले जानेवालों की सूचना न दे दूँ? (ये वे लोग होंगे, जो) उग्र स्वभाव के, अकड़कर चलनेवाले और अभिमान एवं घमण्ड करनेवाले हैं।"

और कहा—

ला यद्ख़ुलुल् जन्न-त मन् का-न फ़ी क़ल्बिहि मिस्क़ालु ज़र्रतिन मिन् किब्र।। (हदीस : मुस्लिम-267)

"ऐसा व्यक्ति शाश्वत सुखधाम स्वर्ग (जन्नत) में प्रविष्टि नहीं पाएगा, जिसके हृदय में कण बराबर भी घमण्ड व अभिमान होगा।"

अतः मनुष्य को चाहिए कि किसी भी प्रकार का अभिमान हो, उसका ारित्याग करे और किसी को भी तुच्छ, उपेक्षित समझकर उसका अपमान न करे। अभिमान का रखना बहुत बड़ा पाप है। इसके स्थान पर विनम्रता बहुत ड़ा उच्च गुण है।

(ब) आतंकित करना

आतंक फैलाना और ऐसे कुकृत्य करना कि लोग आतंकित एवं भयभीत ोकर रह जाएँ, यह सब भी मानसिक हिंसा के ही रूप हैं। यथा कुछ संगठन ा लोगों के गिरोह बहाने कर-करके समाज में उपद्रव (फ़साद), रक्तपात और ख़ून-ख़राबा करते रहते हैं। उनका उद्देश्य भी मात्र मानसिक पीड़ा पहुँचाना और लोगों को आतंकित करके अपना स्वार्थ सिद्ध करना होता है। आतंक फैलानेवालों को ही आतंकी और इस मार्ग पर चलनेवालों को आतंकवादी

कहा जाता है। आतंकवादियों के उपद्रव एवं आतंक के कारण लोग समा
में डर कर रहने लगते हैं। आतंकवादी न्याय, समानता, सुजन्नता प
विश्वास नहीं रखते। इनके हृदय अत्यन्त कठोर और क्रूर होते हैं।
मिथ्यावादी भी होते हैं अर्थात् झूठ इनकी धारणा होती है। ये धर्म का चोल
पहने पाखण्डी धार्मिक लोग भी हो सकते हैं और सामान्य लोगों में नेतृ
करने का ढोंग करनेवाले स्वार्थी नेतृत्वकर्ता भी। इनकी परख मात्र इनक
बोली, कर्म और आचरण पर विचार करने के बाद ही कर सकते हैं। ये कि
प्रकार समाज में आतंक फैलाते हैं उसका एक उदाहरण प्रस्तुत है–

एक गिरोह है, जो शक्तिशाली है और दूसरा गिरोह है, जिसके प्रति व
द्वेष की भावना रखता है। शक्तिशाली गिरोह के नेतृत्वकर्ता पहले अप
शत्रु-समुदाय के प्रति तरह-तरह की झूठी अफ़वाहें फैलाते हैं और जब देख
हैं कि लोगों ने उनकी अफ़वाहों पर यक़ीन कर लिया है, तब वह शक्तिशाल
समुदाय सहसा अपने शत्रु-समुदाय पर हमला कर देता है और इतना ज़ुल
ढाता है कि कमज़ोर समुदाय के लोग डर और भय की स्थिति में जीने लग
हैं। इस प्रकार उस शक्तिशाली समुदाय के ऐसी दुष्कृति करनेवाले लो
परिभाषा एवं लक्षण की दृष्टि से आतंकी और आतंक के मार्ग पर चलने
कारण आतंकवादी हैं, क्योंकि उन्होंने अन्य को आतंकित कर दिया है।

इसी प्रकार वे लोग जो बम ब्लास्ट करते हैं और पूरे गर्व के साथ कह
हैं कि हमने ऐसा किया है या मिथ्या-दोष किसी और के सिर मढ देते हैं, ऐ
लोग भी आतंकवादी हैं। उनको जानना चाहिए कि उनके इस कुकृत्य
कितने मासूमों की जाने जाती हैं और कितने ही परिवार घोर संकट के शिका
हो जाते हैं। उनके इस कुकृत्य के कारण लोग आतंकित होकर (डरकर) रह
लगते हैं। यद्यपि कुमार्ग में चलने से रोकने के लिए और निर्धारित क़ानून व
पालन कराने हेतु दुष्ट लोगों के ख़िलाफ़ की गई वैधिक सख़्ती आतंक व
इस परिभाषा में नहीं आएगी, जबकि इस सख़्ती पर भी दुष्ट लोग डर क
रहने लगते हैं। किन्तु निर्दोषों पर अकारण की गई सख़्ती अवश्यतः आतंव
होगी।

आज के सभ्य समाज में ऐसी हरकतों का कोई स्थान नहीं है

आतंकवादी हरकत वास्तव में प्राचीनकाल की पिशाची और राक्षसी हरकत है, जिसमें सज्जनों और साधुजनों को भयभीत करके रखा जाता था। उन पिशाच और राक्षसों के रहते सज्जन लोग अपनी पद्धति से, खुलकर ईश्वर की आराधना तक नहीं कर सकते थे और न स्वतंत्र होकर जी सकते थे। जहाँ भी ईशपरायण लोग अपने ईश-विनय का आयोजन करते, ये राक्षस एक झुण्ड बनाकर धावा बोल देते। उनको मारते-पीटते और हर तरह से दख़ल डालने का प्रयास करते थे। यदि सत्ता में बैठा उन्हीं राक्षसों का समर्थक होता, तो वे और ही उद्दण्ड हो जाते। सत्ताधारी बजाय उनको रोकने के उनके इस कुकृत्य पर इनाम देता, पुरस्कृत करता। इससे उनका मनोबल और ही बढ़ जाता था।

(स) उपेक्षापूर्ण व्यवहार करना

इसी प्रकार किसी व्यक्ति के साथ अकारण उपेक्षापूर्ण व्यवहार करना, उसके किसी भी कर्म का लोगों के सामने मज़ाक़ उड़ाना कि वह अपमानित होकर रह जाए, यह सब भी मानसिक हिंसा के रूप हैं।

(द) चरित्रहीनता का मिथ्यारोपण करना

मानसिक हिंसा में यह भी सम्मिलित है कि किसी पर चरित्रहीन होने का मिथ्यारोपण किया जाए। इस सन्दर्भ में पत्नी द्वारा पति पर और पति द्वारा पत्नी पर किए जानेवाले मिथ्यारोपण को एक बड़े उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। यही वह हिंसा है जो पति-पत्नी में प्रायः कटुता व तलाक़ से लेकर आत्महत्या तक का कारण बनती है। विशेषकर पत्नी अपने पति को सबसे अलग-थलग करने के लिए सहज ही किसी भी सम्बन्धी स्त्री से या किसी भी स्त्री से अवैध सम्बन्ध होने का झूठा आरोप लगा देती है, जिससे पति पत्नी की इस क्रूरता से परेशान रहने लगता है। कभी-कभी पति भी यही हरकत कर जाता है, जो अति निन्दनीय है। समाज में भी अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए कुछ लोग इस हिंसा का सहारा ले लेते हैं और बड़े-बड़े परिवार को तबाह करके रख देते हैं। राजनैतिक स्तर पर भी यह चरित्रहीनता के मिथ्यारोपण का खेल अधिक खेला जाता है, जो नीतिपरायणता और मानवता के विरुद्ध है। हम सबको इससे बचना चाहिए।

(र) हीनता दर्शानेवाली उपाधियों या व्यंगात्मक शब्दों से पुकारना

किसी में यदि कोई शारीरिक त्रुटि या कुरूपता पाई जाती है या कोई दोष, पाया जाता है, तो उनसे सम्बन्धित विशेषण के शब्द से किसी को पुकारना या बोलना कि जिसे पुकारा जाए उसे बुरा लगे तो यह भी मानसिक हिंसा है। यथा किसी लंगड़ाते हुए को लंगड़ा कहकर पुकारना, किसी की एक आंख ख़राब हो तो उसे काना कहकर पुकारना या किसी ग़रीब की किसी कमी को लेकर उसको अनादृत स्वर या शैली में आवाज़ देना। यह सब भी मानसिक हिंसा हैं। किसी की हँसी उड़ाने के ख़याल से व्यंग्य या ताने देना कि उसे बुरा लगे यह भी मानसिक आघात है। कभी-कभी पत्नी पति से सुन्दर होती है और पति किसी कुरूपता का शिकार होता है, तो पत्नी उसकी उस कुरूपता के विशेषण से पुकारती है, यथा पति मोटा है, तो उसे मोटा हाथी, सिर में बाल कम है, तो गंज़ा, उम्र में कुछ अधिक है तो बुड्ढा आदि। यह सभी पीड़ा पहुँचानेवाली क्रूर हरकतें हैं और सब हिंसा की श्रेणी में आती हैं। कोर्ट ने भी इन्हें क्रूर हरकतें माना है। अभी हाल ही में दिल्ली हाईकोर्ट ने अपने एक फ़ैसले में पत्नी द्वारा पति पर अन्य महिला से अवैध सम्बन्ध होने के मिथ्यारोपण और मोटा हाथी कहकर उपहास करने और आत्महत्या कर लेने की धमकी देने को क्रूरता स्वीकार करते हुए तलाक़ का आधार माना है और तलाक़ दिलाया है।[1]

किसी को भी बुरी उपाधि से पुकारना स्वयं अपनी तुच्छता का प्रमाण देना है। क़ुरआन में किसी को भी बुरी उपाधि से पुकारने और व्यंग्य करने से सख़्ती से मना किया गया है। कहा गया—

व ला तल्मिज़ू अन्फ़ुसकुम् व ला तनाबज़ू बिल् अल्क़ाब।।

(49/11)

अर्थात् "एक-दूसरे पर व्यंग्य न करो और न एक-दूसरे को बुरी

---

1. दे॰ नवभारत टाइम्स, 27 मार्च 2016 शीर्षक "पति को 'मोटा हाथी' कहना तलाक़ के लिए काफ़ी" हाईकोर्ट; बी॰बी॰सी॰ न्यूज़ (हिन्दी) 29 मार्च 2016; अमर उजाला 26 मार्च 2016 (नई दिल्ली)

उपाधि से याद करो।"

किसी की हँसी या मज़ाक़ उड़ाने से मना करते हुए कहा गया—

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू ला यस्ख़र क़ौमुम्मिन् क़ौमिन असा अय्यकुनू ख़ैरम्मिन् हुम् व ला निसाउम्मिन् निसाइन असा अय्यकुन्ना ख़ैरा मिन् हुन्ना। (49/11)

अर्थात् "ऐ लोगो, जो ईमान लाए हो! न मर्द दूसरे मर्द की हँसी उड़ाएँ, हो सकता है कि वे उनसे अच्छे हों, और न औरतें दूसरी औरतों की हँसी उड़ाएँ हो सकता है कि वे उनसे अच्छी हों।"

वरिष्ठ अधिकारी की ओर से भी कभी-कभी अपने अधीन कर्मचारियों को ऐसी मानसिक पीड़ा पहुँचाई जाती है कि वे आत्महत्या तक कर लेने पर विवश हो जाते हैं, जो स्पष्टतः मानसिक हिंसा एवं क्रूरता का ही एक रूप है। उस मरनेवाले की मृत्यु का दायित्व उस व्यक्ति व अधिकारी के सिर ही आना चाहिए जो उसे आत्महत्या करने पर विवश करता है। आत्महत्या करने हेतु उकसाने एवं विवश करने के अपराध सम्बन्धी भारतीय दण्ड-संहिता की धारा 306 मौजूद है। वैसे अधिकारियों और ऑफ़ीसर्स को चाहिए कि अपने अधीन कर्मचारियों के प्रति नर्मी एवं सहानुभूति का रवैया सदैव अपनाए रखें। अपने बड़ा होने का प्रमाण अपने व्यवहार, आचरण तथा सहनशीलता और क्षमा से दें कि **क्षमावतो जयो नित्यम्** (क्षमावानों की सदैव जय होती है) और मृत्यु के बाद : **क्षमावतां ब्रह्मलोक लोकाः परमपूजिताः** अर्थात् क्षमावान लोगों को ब्रह्मलोक में उत्तम स्थान मिलता है। अधीन कर्मचारियों को भी चाहिए कि जायज़ कामों में अपने अधिकारियों के आदेशानुपालन एवं उनकी आज्ञाकारिता में थोड़ी भी कोताही नहीं करें। अपने किसी भी आचरण से बिलकुल अवसर न दें कि उनको क्रोध आए। भूल हो जाने पर सदैव माफ़ी मांगे, ज़बान न लड़ाएँ।

क़ुरआन की दृष्टि में सभी के साथ ससम्मान एवं नर्मी से पेश आना बड़ी नेकी और पुण्य का कार्य माना जाता है। क़ुरआन (2/237) में इस गुण को ईशपरायण होने का लक्षण (अनुकूल) कहा गया है।

व अन् तअफ़ू अक़रबू लित्तक़वा।।

"और यह कि तुम माफ़ कर दो तो यह ईशपरायणता से अधिक निकट है।" (2:237)

क़ुरआन में एक और स्थान पर कहा गया है कि उद्दण्ड एवं दुख पहुँचाने-वालों के प्रति भी नर्मी और उदारता का तरीक़ा अपनाओ। कहा गया—

ख़ुज़िल् अफ़्व वामुर्बिल्-उर्फ़ि व आरिज़् अनिल् जाहिलीन।।

"नर्मी और माफ़ करने की नीति अपनाओ, भलाई के लिए कहते जाओ, और अज्ञानियों से न उलझो।" (7:199)

एक बार पैग़म्बर के जीवनकाल में किसी ने अज्ञानतावश कुछ उद्दण्डता दिखाई तो उपस्थित लोगों को क्रोध आ गया और अपनी प्रतिक्रिया दिखानी चाही, तो पैग़म्बर (सल्ल०) ने सख़्ती के साथ रोक दिया और कहा कि इसे छोड़ दो। तुम नर्मी के लिए भेजे गए हो, सख़्ती के लिए नहीं। (हदीसशास्त्र : बुख़ारी, 220) अर्थात् शत्रुओं के प्रति भी व्यक्ति को चाहिए कि जहाँ तक हो सके उसके सम्मान का ध्यान रखते हुए नर्मी से काम ले।

दूसरे के प्रति ससम्मान और नर्मी से पेश आना यह व्यक्त करता है कि वह व्यक्ति आन्तरिक रूप से बहुत उच्च है। इसके विपरीत लोगों के प्रति सख़्त होकर और अपमानित करनेवाले शब्द बोलनेवाला होना अधम होने का लक्षण है। ऐसे व्यक्ति के निकट लोग जाना नहीं चाहते, बल्कि उससे दूर रहना अच्छा समझते हैं। पैग़म्बर (सल्ल०) ने एक अवसर पर ऐसे व्यक्ति के प्रति कहा—

"वह बदतरीन (अत्यन्त अधम) व्यक्ति है, जिसे उसकी बदकलामी (दुष्टतापूर्ण बोली बोलने) के डर से लोग (उसे) छोड़ दें।"

(हदीसशास्त्र : बुख़ारी, 6054, 6131)

हमारे हिन्दी भारतीय समाज में सम्बोधित के लिए सर्वनाम तू, तुम और आप बोला जाता है। सामान्य रूप से 'तू' छोटों या उपेक्षित जनों के लिए, 'तुम' बराबर और दोस्तों के लिए और 'आप' सम्मानित एवं अपने से बड़े व्यक्तियों के लिए बोला जाता है। आज के सभ्य और सुसंस्कृत परिवारों में अपने से छोटों के लिए भी 'आप' का शब्द बोला जाने लगा है। किसी

सम्मानित व्यक्ति को 'तू' बोल देना महाभारत की दृष्टि में उसका अपमान ही नहीं, बल्कि वध कर देने के समान माना गया है। श्री कृष्ण जी अर्जुन से कहते हैं–

त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत।।

(कर्ण॰ 69/83)

"हे भारत! यदि किसी गुरुजन को 'तू' कह दिया जाए तो यह साधु पुरुषों की दृष्टि में उसका वध ही हो जाता है।"

अवधेन वधः प्रोक्तो यद् गुरुस्त्वमिति प्रभुः।।

(महाभा॰ 8/69/86)

"गुरु (प्रतिष्ठित) को तू कह देना उसे बिना मारे ही मार डालना है।"

अतः मनुष्य का अपनी मनुष्यता एवं बुद्धिजीवी होने का प्रमाण देते हुए सदैव प्रयास होना चाहिए कि उसके किसी भी कर्म—चाहे मन से हो, वाणी से हो या शारीरिक हो—किसी भी दूसरे भाई के मानस पर आघात न होने पाए, हमेशा बचे। क्योंकि मानव तभी मानव है, जब वह आदर, प्रेम और भाईचारगी पर है, अन्यथा मनुष्य में और पशु में कोई अन्तर नहीं। फिर अहिंसा तो सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने का लक्षण और गुण है।

वाचिक हिंसा एवं अहिंसा

वाणी द्वारा दूसरों को जब दुख या तकलीफ़ पहुँचाई जाती है तो उसे वाचिक हिंसा कहा जाता है। यह भी मनुष्य के अधम और भ्रष्ट हो जाने का ही प्रमाण होता है, जो उसकी वाणी से छलकता रहता है। दुष्ट व्यक्ति की भाषा और उसका व्यवहार उसकी अधमता और नीचता को प्रकट करते हैं। उसकी बोली में अहंकार, अभिमान, अनम्रता, विनयहीनता, दुष्टता व निकृष्टता का प्रदर्शन होता रहता है। वह अत्यन्त आत्मश्लाघी (अपनी प्रशंसा आप ही करनेवाला) और घमण्ड में चूर होता है। इस प्रकार का व्यक्ति ऐसा नहीं है कि वह कुछ पा चुका होता है या कुछ अच्छा बन चुका होता है, वस्तुतः वह अपने अन्तःकरण से हीन और उच्चता से बिलकुल रिक्त होता है; उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाने के कारण उसका अन्तर (अन्दरून) मृत-प्राय हो जाता है, जिसके कारण उसके एहसास करने की शक्ति ख़त्म हो चुकी होती है। वह मानवीय स्तर से अत्यन्त नीचे गिरा हुआ और नैतिक गुणों से ख़ाली होता है। वह झूठ और आडम्बर में अत्यन्त प्रविण्य (माहिर) होता है। वह किसी के प्रति भी हिंसक हो सकता है। उसकी बोली अत्यन्त पीड़ादायक और उसकी नीति दूसरों का अधिकार हनन करनेवाली होती है। इस प्रकार के व्यक्ति के लिए वेद में **"द्रोघवाचः"** (दे.ऋ. 7/104/14, अथर्ववेद 8/4/14) शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ होता है—द्रोहपूर्ण मिथ्याभाषी। अर्थात् शत्रुता और अनिष्टता चाहनेवाला, असत्यवादी, झूठा और कपटपूर्ण आचरणवाला।

ऐसे दुष्टों के लिए एक शब्द 'द्रोहाट' भी प्रयुक्त होता है, क्योंकि 'द्रोघवाची' वैडालव्रतिक यानी ऊपर से देखने में सीधा-सादा, भोला-भाला तथा साधु और हितकारी नज़र आता है, लेकिन अन्दर से लोगों के प्रति द्रोह-भावना का रखनेवाला दृष्ट, पाखण्डी और अहित चिंतक होता है। अगर

दूसरे शब्दों में कहा जाए तो ऐसा झूठा व्यक्ति इन्द्रायन के फल की भाँति ऊपर से देखने में अत्यन्त मधुर, लेकिन अन्दर से अत्यन्त कड़वा होता है। यह झूठ बोलने और दूसरों की बुराई व निन्दा करने में अत्यन्त प्रविण्य (माहिर) होता है। इसकी वाचाल-प्रवीण्यता (बात बनाने और बात करने में माहिर होना) का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि यह किसी गुणवान को भी निखद, निकृष्ट व गुणहीन सहज ही सिद्ध करने में सफल हो जाता है। यह अत्यन्त आडम्बरी और छली होता है। ऐसा व्यक्ति स्वभाव का बहुत ही चापलूस और स्वयं भी चापलूसी को अधिक पसन्द करता है। ऐसे व्यक्ति के साथ कोई कितनी ही आत्मीयता और अपनेपन का व्यवहार क्यों न करे, लेकिन अवसर आने पर वह अपने स्वभाववश किसी पर भी किसी भी प्रकार का आघात करने से थोड़ा भी नहीं चूकता। उदाहरणतः कोई व्यक्ति ऐसे व्यक्ति से आत्मीयता बढ़ाने और वैमनस्य को ख़त्म करने के लिए उसके हर आड़े वक्त काम आता है, लेकिन जब उसके हाथ में थोड़ी भी शक्ति आती है या कोई भी हित करने का अवसर आता है तो वह अपनी नीचता अवश्य दिखा जाता है। वह हर अपनेपन और उपकार को भूलकर अपनी पूरी शक्ति का उपयोग करता है। वास्तव में ऐसे व्यक्ति का अस्तित्व अहंकार और अभिमान का होता है। अतः यह अपनी बोली से सदैव दूसरों पर आघात करता रहता है।

यद्यपि ऐसा नहीं होता कि व्यक्ति पूर्णतः दुष्ट और दुर्जन ही हो तभी वाचिक आघात करता है। कभी-कभी सामान्य व्यक्ति से भी ऐसी त्रुटि हो जाती है। लेकिन जो दुष्ट होते हैं, उन्हें इसका एहसास नहीं हो पाता, किन्तु सज्जन पुरुषों को तुरन्त इसका एहसास हो जाता है कि सम्बोधित को उनकी वाणी से तकलीफ़ हुई है और प्रायः वे माफ़ी भी माँग लेते हैं।

कटुवचन की पीड़ा

कटु वाणी के आघात से किसी को कितनी पीड़ा होती है इसका अन्दाज़ा हम महाभारत के इस श्लोक से लगा सकते हैं। आदिपर्व (79/13 के अन्तर्गत) और कुछ शब्दांतर के साथ सभापर्व (6/67) में है—

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
शनैर्दुःख शस्त्रविषाग्निजातं तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु।।

अर्थात् "मुख से जो कटुवचन रूपी बाण छूटते हैं, उनसे आहत होकर मनुष्य रात-दिन शोक में डूबा रहता है। शस्त्र, विष और अग्नि से प्राप्त होनेवाला दुख धीरे-धीरे अनुभव में आता है। (परन्तु कटुवचन तत्काल ही अत्यन्त कष्ट देने लगता है)। अतः विद्वान पुरुषों को चाहिए कि वह दूसरों पर वाग्बाण (शब्दों के तीर) न छोड़ें।"

एक और स्थान पर है–

सरोहति शरैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्।।

(आदिपर्व 79/14; विदुरनीति 2/78)

अर्थात् "बाण से बिंधा हुआ वृक्ष और फरसे से काटा हुआ जंगल फिर पनप जाता है, परन्तु वाणी द्वारा जो भयानक कटुवचन निकलता है, उससे घायल हुए हृदय का घाव फिर नहीं भरता।"

अतः वाणी द्वारा किया गया आघात यानी कटुवचन से की गई हिंसा मनुष्य के लिए अत्यन्त कष्टदायक होती है। महाभारतकाल के नीतिज्ञ विद्वान विदुर जी भी कहते हैं–

कर्णिनालीकनाराचान् निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयोहिसः।।

(विदुरनीति 2/79)

अर्थात् "कर्णि (फलदारबाण), नालीक और नाराच (नामक बाणों) को शरीर से निकाला जा सकता है, परन्तु कटुवचन रूपी बाण को नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि वह हृदय के भीतर धंस जाता है।"

इसी लिए कटु एवं कठोर वचन बोलने से मना करते हुए महाराज विदुर ने दुर्योधन को सम्बोधित करते हुए कहा–

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी
न हीनतः परमभ्याददीत।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेद्रुषतीं पापलोक्याम्।।

(सभापर्व० 66/6)

"किसी को मर्मभेदी बात न कहें, किसी से कठोर वचन न बोले। नीच कर्म के द्वारा शत्रु को वश में करने की चेष्टा न करें। जिस बात से दूसरे को उद्वेग हो, जो जलन पैदा करनेवाली और नरक की प्राप्ति करानेवाली हो, वैसी बात मुँह से न निकालें।"

मनुष्य का व्यक्तित्व वाणी में

क़ुरआन में कहा गया है—

व क़ुल् लिइबादी यक़ूलुल्लती हिय अह्सन।।

(क़ुरआन, 17/53)

"और ऐ नबी! मेरी भक्ति (अर्थात् ईश्वर की दासता) अपनानेवालों से कह दो कि मुख से वह बात निकाला करें, जो उत्तम हो।"

मनुष्य की वाणी का मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में एक मुख्य भूमिका होती है। जब व्यक्ति कटु तथ्य को भी मधुरवाणी से व्यक्त करता है, तब भी वह सर्वहृदय-प्रिय हो जाता है और जब वही बात कटुवाणी में बोलता है तो लोग घृणा करने लगते हैं। इसी लिए ईश्वर चाहता है कि समस्त लोग ही नहीं, तो कम-से-कम वे लोग जो ईश्वर पर दृढ़ आस्था रखने, ईश्वरीय आदेश को मानने और दासता अपनाने का दावा करते हैं, वे अपने व्यक्तित्व को ऊँचा बनाए रखें। व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी बोली से प्रकट होती है, अतः जब बोलें तो उत्तम बोली मुख से निकालें। इस उत्तम बोली में सत्य बोलना, मधुर बोलना और कल्याणकारी एवं जनहितकारी बोलना सब कुछ सम्मिलित है। शास्त्रों में कटु एवं क्रूर (कठोर) बोली बोलनेवालों को पशु के समान और प्रिय बोलनेवाले को देवता (फ़रिश्ते) के समान समझा गया है। अग्नि पुराण में है—

देवास्ते प्रियवक्तारः पशवः क्रूरवादिनः।।

(238/16)

अर्थात् "प्रिय बोलनेवाले देवता के समान होते हैं और क्रूर व कटुवचन बोलनेवाले पशुतुल्य हैं।"

सामवेद में मधुरवाणी के बारे में कहा गया है—**"भद्रा उत प्रशस्तयः"** अर्थात् सुन्दरवाणी कल्याणकारिणी होती है।

मधुरवाणी बोलनेवाले लोग जहाँ होते हैं वहाँ प्रेम और स्नेह का बड़ा ही सुन्दर वातावरण होता है और ऐसे वातावरण की सभी कामना करते हैं। ऋग्वेद में प्रार्थना की गई है—

मधुमन्मे परायणं मधुमत् पुनरायनम्।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम्।।

(ऋ॰10/24/6)

अर्थात् "हे अश्वि देव! मेरा बाहर जाना स्नेहयुक्त हो और पुनः लौट आना भी वैसा ही मधुर प्रीतियुक्त हो। हे देव! इसी प्रकार तुम दोनों अपनी दिव्य-शक्ति से हमें मधुर प्रीति से युक्त बनाओ।"

अतः मनुष्य को चाहिए कि अपनी वाणी और भाषा ऐसी कदापि न अपनाए कि उससे किसी के दिल को ठेस या दुख पहुँचे। अगर सत्य एवं यथार्थ बात भी कहनी हो तब भी मधुर शैली में ही कहनी चाहिए। इसी लिए कहा भी जाता है कि—**'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात'** अर्थात् "सत्य बोलो, प्रिय बोलो।" **व क़ूलू लिन्नासि हुस्ना** (क़ुरआन, 2/83) "और लोगों से भली बात कहना।"

वाचिक हिंसा में जिह्वा की भूमिका

मनुष्य अगर अपनी जिह्वा (ज़बान) को नियंत्रित कर ले तो उसके वाचिक (वाणी से) हिंसात्मक दुष्कर्म सभी नियंत्रित हो सकते हैं, क्योंकि वाचिक हिंसा में जिह्वा की ही मुख्य भूमिका होती है।

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने एक मौक़े पर नमाज़ (ईश-विनय), रोज़ा

(व्रत), सदक़ा (दान-पुण्य) और ईशपरायणता व ईश्वर के मार्ग में जानतोड़ संघर्ष करने और सत्य पर जमे रहने की महत्ता का उल्लेख किया और बताया कि इनको धर्म में शीर्ष-स्थान प्राप्त है, लेकिन इसके साथ ही एक प्रश्न के उत्तर में बताया कि इन सबकी निर्भरता जिह्वा (ज़बान) पर है और उन्होंने अपनी जिह्वा पकड़कर कहा कि इसको (अनुचित चलने से) रोको।

(दे॰ हदीसशास्त्र : मुसनद अहमद, तिरमिज़ी, इब्ने-माजा)

इसी प्रकार पैग़म्बर ने एक बार और कहा—

आदम की सन्तान (यानी मनुष्य) जब सुबह करती है तो शरीर के सारे अंग जिह्वा (ज़बान) के सामने याचना करते हैं कि हमारे विषय में ईश्वर से डर, क्योंकि हम तुझसे ही सम्बद्ध (जुड़े हुए) हैं। अगर तू ठीक रही तो हम भी ठीक रहेंगे और अगर तूने टेढ़ अपनाई तो हममें भी टेढ़ आ जाएगा।

(हदीसशास्त्र : तिरमिज़ी)

वाणी के सन्दर्भ में ही एक घटना का उल्लेख हदीसशास्त्र (मुसनद अहमद, अल-बैहक़ी-फ़ी-शोबिल-ईमान) में हुआ है कि एक स्त्री को, जो कि बहुत अधिक नमाज़, रोज़ा और दान-पुण्य (सदक़ात) करनेवाली थी, लेकिन अपनी ज़बान से ऐसे कटु और कड़वे शब्द निकालती थी कि लोग तंग और परेशान रहते थे। इसी प्रकार एक दूसरी स्त्री थी जो रोज़ा, नमाज़ और दान-पुण्य (सदक़ा) बहुत कम करती थी, लेकिन आस-पड़ोस और लोगों के प्रति उसके व्यवहार और वाणी में इतनी मधुरता थी कि सर्व-हृदय (हरदिल) को प्रिय थी। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) से जब इन स्त्रियों के पारलौकिक परिणाम के सम्बन्ध में पूछा गया तो पहली स्त्री को, जिसकी वाणी में कटुता थी, उसके रोज़ा, नमाज़ और दान-पुण्य की अधिकता के बावजूद पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उसको नारकीय यानी जहन्नमी कहा और दूसरी स्त्री के सम्बन्ध में कहा कि वह शाश्वत सुखधाम स्वर्ग में निवास करनेवाली यानी जन्नती है।

ज्ञात हुआ कि मनुष्य की गति उसकी वाणी पर है, चाहे वह देखने में कितना ही पारसा (धर्मात्मा) क्यों न बना रहे। अगर उसकी बोली और वाणी में भी पारसाई और पवित्रता है तो कहा जा सकता है कि वह वास्तविक धर्मपरायण है।

मनुष्य जिह्वा से ही किसी के भी प्रति मधुरवाणी बोलकर दुलारा और प्रिय बन जाता है और जिह्वा से ही ईश्वर का इनकार या स्वीकार करके ईशद्रोही या ईशभक्त बन जाता है। जिह्वा से ही दुष्टता के बोल बोलकर जगत् में उपद्रव का कारण हो जाता है और जिह्वा से ही अमन और शान्ति की बातें करके सभी के सुख का साधन कर देता है। अतः जिह्वा का सदुपयोग हो, सही दिशा में चले, इस हेतु क़ुरआन समाज के धर्मज्ञाता विद्वानों पर इसका उत्तरदायित्व डालता है। क़ुरआन कहता है–

"क्यों इनके धर्मज्ञाता और बड़े लोग (अर्थात् विद्वान लोग) इन्हें अपराध पर जिह्वा चलाने और अवैध खाने से नहीं रोकते? (उनकी लापरवाही) निस्सन्देह बहुत ही निकृष्ट कृति है, जो वे तैयार कर रहे हैं।" (सूरा-5 माइदा, आयत-63)

क़ुरआन की दृष्टि में जो यथार्थ रूप से धर्म के ज्ञाता होते हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि मधुरशैली और उत्तमवाणी श्रेष्ठजन होने का मुख्य गुण है। क़ुरआन एक स्थान पर पैग़म्बर (सल्ल॰) को सम्बोधित करके कहता है कि–

"हे पैग़म्बर, मेरी बन्दगी करनेवालों से कह दो कि मुख से वह बात निकाला करें जो उत्तम हो। वास्तव में वह शैतान है जो मनुष्यों के मध्य बिगाड़ पैदा कराने का प्रयास करता है।" (क़ुरआन, 17/53)

उपरोक्त आयत से यह भी ज्ञात हुआ कि जो लोग देखने में तो धर्म के बड़े ज्ञाता एवं धर्मपरायण प्रतीत होते हैं, किन्तु जब मुख खोलते हैं तो ज़हर उगलते हैं, लोगों में बिगाड़, उपद्रव पैदा करनेवाली बातें करते हैं। यथार्थ में ऐसे लोग धर्म के ज्ञाता नहीं, शैतान हैं, मानवता के शत्रु हैं; हिंसावादी और दुष्ट हैं।

कभी-कभी सुहृदय लोगों से भी भूल-चूक में ऐसी दुष्टता भरी बातें निकल जाती हैं, किन्तु उनमें अन्तर यह होता है कि वे तुरन्त अपने शब्द वापस ले लेते हैं और माफ़ी माँग लेते हैं। वे अपने पालनहार प्रभु को याद कर लेते हैं। क़ुरआन निर्देश भी देता है कि–**वज़्कुर्रब्ब-क इज़ा नसीत** (18/24) अर्थात् "अगर भूले से ऐसी बात मुख से निकल जाए तो तुरन्त अपने रब

(प्रभु) को याद करो।"

महापंडित चाणक्य जिह्वा (ज़बान) से प्रार्थना करते हुए कहते हैं–

हे जिह्वे कटुकस्नेहे मधुरं किं न भाषसे।
मधुरं वद कल्याणि लोकोऽयं मधुरप्रियः।।

(चाणक्य संग्रह 2/11)

"हे कटु और मीठा बोलनेवाली जिह्वे! तू (सदैव) मीठा क्यों नहीं बोलती? हे कल्याणि! तू मधुर भाषण कर, क्योंकि संसार के लोग मधुरभाषी से प्रेम करते हैं।"

बाइबल की किताब नीतिवचन (13/3) में कहा गया है–

"Whoever guards his mouth preserves his life, he who open wide his lips comes to ruin."

अर्थात् "जो अपने मुँह की चौकसी करता है, वह अपने प्राण की रक्षा करता है, परन्तु जो गाल बजाता है, उसका विनाश हो जाता है।"

एक परामर्श : सदैव मीठा एवं मधुर बोलिए

मुख से निकले हुए कुछ शब्द ऐसे होते हैं कि लोगों का प्यारा बना देते हैं और कुछ शब्द ऐसे होते हैं कि शत्रु बना देते हैं। भारतीय मनीषियों और चिन्तकों ने इस तथ्य की बड़ी गहराई के साथ परख की है। कबीर ने कहा–

ऐक शब्द सों प्यार है, ऐक शब्द कू प्यार।
ऐक शब्द सब दुश्मना, ऐक शब्द सब यार।।

(कबीर के दोहे)

अर्थात् "एक शब्द से सभी से प्रेम उत्पन्न होता है, एक शब्द सभी को प्यारा लगता है। एक शब्द सभी को शत्रु बना देता है और एक शब्द ही सबको मित्र बना देता है।"

ऐक शब्द सुख खानि है, ऐक शब्द दुख रासि।
ऐक शब्द बंधन कटै, ऐक शब्द गल फांसि।।

(कबीर के दोहे)

"एक शब्द सुख का भण्डार है और एक ही शब्द दुखों का कारण बन जाता है। एक ही शब्द जीवन के समस्त बन्धनों से मुक्त कर देता है और वही शब्द गले की फाँस बन जाता है।"

हदीसशास्त्र में है कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा—

"जो व्यक्ति ईश्वर और परलोक पर पूर्ण आस्था (विश्वास) रखता हो वह या तो भलाई की बात कहे, अन्यथा चुप रहे।"

(हदीसशास्त्र : बुख़ारी, मुस्लिम)

क़ुरआन में कहा गया—

व क़ूलू लिन्नासि हुस्ना। (2/83)

"और लोगों से भली बात करना।"

उपरोक्त उद्धरण की शैली चेतावनी और आग्रह-युक्त है। जिससे अभिप्रा यह निकलता है कि मनुष्य को हरहाल में मधुरशैली अपनानी और लोगों वे हितों की बात करनी चाहिए। यदि भलाई और जनहितार्थ बात न कर सके लोगों की भलाई की बोली न बोल सके तो उसका चुप रहना उत्तम है।

कविवर रहीम जी ने मनुष्य की परख ही उसकी बोली पर रखी है औ मिसाल देकर कहा—

दोनों रहिमन एक से, जौं लौं बोलत नाहिं।
जान परत है काक पिक, ऋतु वसंत के माहि।।

अर्थात् "हे रहीम! कौआ और कोयल जबतक मुख से बोलते नहीं, दोनों एक ही समान प्रतीत होते हैं। लेकिन बसंत ऋतु के आने पर जब कोयल अपनी मीठी बोली कुहू-कुहू निकालती है और कौआ अपनी कर्कश आवाज़ बोलता है तो दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।"

मधुर और कटुक वचन के सम्बन्ध में कहा जाता है—

मधुर वचन है औषधि कटुक वचन है तीर।
श्रवण द्वार होइ संचरै सालै सकल शरीर।।

अर्थात् "मधुर बोली औषधि के समान है कि अच्छे प्रिय वचन

बोलने से बीमार भी अपने को स्वस्थ महसूस करने लगता है, जबकि कटुक वचन तीखे तीर के समान होते हैं कि कानों के द्वारा शरीर में धँसते हैं और पूरे शरीर को पीड़ित कर देते हैं।" अतः

ऐसी वाणी बोलिए कि मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै आपहु शीतल होय।।

अर्थात् "ऐसी वाणी बोलिए कि जिसमें समर्पण और विनय हो, उसमें घमण्ड और अभिमान न हो। इससे व्यक्ति स्वयं भी शीतलता की अनुभूति करेगा और दूसरे भी शीतलता यानी मधुरता का एहसास करेंगे।"

उपर्युक्त प्रकार की शिक्षाओं के विद्यमान होने के उपरान्त भी कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि हमारे समाज में वाचिक हिंसा नहीं रुकती और न कटुक वचन के तीरों का प्रहार रुकता है। वर्तमान में तो कुछ लोग इतने विषाक्त हो चुके हैं कि उनके अन्दर की राक्षसी प्रवृत्ति उनकी ज़बान पर छलकती रहती है। विशेषकर उन लोगों के मुँह पर कोई लगाम ही नहीं नज़र आती, जिन्हें किसी भी प्रकार की शक्ति या संरक्षण मिला हुआ है। ये अत्यन्त निकृष्ट प्रकार के दरिन्दे हैं, जो मानव-रूप में मानव- समाज में पाए जाते हैं। ऐसे दुष्टों को आदि पर्व में सचेत किया गया है—**मात्मना विस्मयं गमः** (135/9) यानी "अपने आपपर गर्व मत करो।" **दोषान् स्वान् नार्हसेऽन्यस्मै वक्तुं स्वबलदर्पितः** (वन॰ 39/30) "अपने बल के अभिमान में अपने दोष दूसरों पर नहीं लगाओ।" **शूरोऽस्मि न दृप्तः स्याद् बुद्धिमानीति वा पुनः** (विराट॰ 4/32) "मैं शूरवीर हूँ या बुद्धिमान हूँ यह मानकर अभिमान नहीं करना।" **मानाभिभूतानपचिराद् विनाशः समपद्यात्**।(वन॰ 94/12) "जो अभिमान से लिप्त थे उनका शीघ्र ही विनाश हो गया।" पवित्र क़ुरआन में ईश्वर ऐसे तुच्छ अन्तःकरणवालों का उल्लेख करते हुए कहता है—

"जब उस (अधम व्यक्ति) को सत्ता (शक्ति) मिल जाती है, तो धरती में उसकी सारी दौड़-धूप इसलिए होती है कि बिगाड़ फैलाए, खेतों (अर्थात् मानव के जीवन-संसाधनों) को नष्ट करे और मनुष्यों

को तबाह करे—हालाँकि ईश्वर (जिसे वह साक्षी बनाता है) बिगाड़ कदापि नहीं चाहता—जब उससे कहा जाता है कि ईश्वर से डर, तो अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान उसको पाप-कर्म पर जमा देता है। ऐसे व्यक्ति के लिए तो बस नरक ही है और वह (नरक) बहुत बुरा ठिकाना है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयतें-205, 206)

व्यक्ति के जो मन में होता है, वही बोलता है

यदि स्थिर मन से विचार किया जाए तो मिलेगा कि इस ख़राबी की जड़ में वही तत्व क्रियाशील है, जिस पर मानसिक हिंसा के सन्दर्भ में वार्ता की जा चुकी है और वह है—**'मानस का विकृत हो जाना।'** जब मनुष्य के अन्तःकरण और मानसिकता में विकृति आ जाती है तो उसकी वाणी में भी विकृति एवं कटुता आ जाती हैं। यानी जो मन में होता है, वही वाणी में होता है।

उपनिषद् में कहा भी गया है—

तद्यद्धै मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति।।

(जैमिनीयोपनिषद् 1/40/5)

अर्थात् "जो मन मनन करता है, वही वाणी व्यक्त करती है।"

तान्यात्मनेऽकुरुतान्यत्रमना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति। कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव तस्मादपि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाति।।

(बृहदारण्यकोपनिषद् अ॰-1, ब्रा॰-5, मं॰-3)

अर्थात् "मनोयोग से ही सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। यदि मन अन्यत्र है तो समुचित रूप से देखा-सुना भी नहीं जाता। इसी लिए प्रायः कहा जाता है—'मेरा मन दूसरी जगह था, इसलिए मैं नहीं देख सका' तथा 'मेरा मन यहाँ नहीं था, इसलिए मैं नहीं सुन सका'। अतः स्पष्ट है कि व्यक्ति मन से ही देखता है और सुनता है। काम, संकल्प, श्रद्धा, संशय, अश्रद्धा, धारणा

शक्ति (धृति), अधृति ही अर्थात् लज्जा, बुद्धि और भय सभी मन के ही रूप हैं। इसी कारण शरीर के पृष्ठभाग (पीठ) की ओर से स्पर्श किए जाने पर मनुष्य मन द्वारा इसे जान लेता है।''

मन (मानस) की भूमिका के बारे में ही एक अन्य उपनिषद् में कहा गया—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।।

''मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है।''

भावार्थ यह कि—**अनंत वै मनः** (बृह॰ 3/1/9) अर्थात् हमारा मन अनन्त सामर्थ्य से परिपूर्ण है।

अतः मनुष्य को चाहिए कि मन और वाणी को पूर्णतः क़ाबू में रखे और इन्हें सत्य-पथ की ओर उन्मुख करे। श्री शिव जी ने भी किसी भी कर्म का क्रम इस प्रकार माना है। देवी पार्वती जी से उन्होंने कहा—

मनः पूर्वे तु वा कर्म वर्तते वांग्यं ततः।
जायते वै क्रियायोग मनु चेष्टाक्रमः प्रिये।।

(महाभा॰ अनु॰ दान-धर्म पर्व, अध्याय 145)

''हे प्रिये! पहले मन के द्वारा कर्म का चिंतन होता है। फिर वाणी द्वारा उसे प्रकाश में लाया जाता है। तद्नन्तर क्रिया द्वारा उसे सम्पन्न किया जाता है। इसके साथ चेष्टा का क्रम चलता रहता है।''

इसी प्रकार और कहा गया—

अभिद्रोहोऽभ्यसूया च परार्थेषु च स्पृहा।।

(अनुशासन पर्व अध्याय-145)

'अभिद्रोह' अर्थात किसी के अनिष्ट, अपकार आदि की वह प्रबल भावना जो द्वेष, वैर आदि के कारण उत्पन्न होती है और उसे हानि पहुँचाने का प्रयत्न कराती है। निंदा, बुराई, निष्ठुरता, उत्पीड़न आदि। 'असूया' अर्थात् मन की वह वृत्ति जिससे दूसरों के दोष दिखाई देते हों और गुण, सुख आदि

सहन न किए जा सकते हों। यथा—ईर्ष्या, क्रोध, जलन आदि। 'परार्थेषु' अर्थात् पराए अर्थ (धन) की अभिलाषा—ये मानसिक अशुभ कर्म हैं।

अतः मनुष्य को चाहिए कि यदि वह अहिंसावादी होना चाहता है और मानव-समाज में शान्ति की स्थापना चाहता है तो उपरोक्त हिंसाओं से सच्चे दिल के साथ परहेज़ करे और इनसे हर सम्भव बचने का प्रयास करे। किसी के प्रति न बुरा सोचे और न कोई ऐसी बात कहे कि किसी को उससे तकलीफ़ पहुँचे। अतः मन, वचन दोनों से परहित की राह चले और किसी के प्रति भी विद्रोह की भावना न लाए।

तीसरी हिंसा—शारीरिक हिंसा है। इस पर आगे विवेचना प्रस्तुत है :

शारीरिक हिंसा एवं अहिंसा

यह वह हिंसा है, जो प्रत्यक्षतः सभी को दिखाई देती है। इसे कर्मणा हिंसा भी बोला जाता है, क्योंकि इस हिंसा का सम्बन्ध कर्म या क्रिया से है। इसमें किसी के शरीर पर प्रहार करना, मारना-पीटना या क़त्ल व वध करना सभी सम्मिलित हैं। सामान्य रूप से जिस हिंसा से, हिंसा अभिप्राय लिया जाता है, वह यही हिंसा होती है। लेकिन धर्मशास्त्रों और विद्वानों की दृष्टि में सभी प्रकार के शारीरिक प्रहार, आघात या हत्याएँ हिंसा की श्रेणी में नहीं आतीं। यथा अपराधी को शारीरिक दण्ड देना, उत्पीड़ित के रक्षार्थ अत्याचारी पर प्रहार करना, स्वरक्षा हेतु आततायी पर आघात करना इत्यादि। मनु महाराज ने कहा है–

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।।

(मनु॰ 8/350)

अर्थात् "गुरु, बालक, वृद्ध या बहुत शास्त्रों का जाननेवाला ब्राह्मण भी आततायी होकर (मारने के लिए) आए तो उसे बेखटके मार डाले।"

बृहद्विष्णुस्मृति के अध्याय-5 श्लोक 185 और 186 में भी यही बात कही गई है। आततायी कौन-कौन हो सकते हैं? इस तथ्य को बृहद्विष्णुस्मृति में और स्पष्ट कर दिया गया है। कहा गया–

उद्यतासिविषाग्निञ्च शापोद्यतकरं तथा।
आथर्वणेन हन्तारं पिशुनञ्चैव राजसु।।
भार्यातिक्रमिणञ्चैव विद्यात् सप्ताततायिनः।
यशोवित्तहरानन्यानाहुर्धर्मार्थहारकान्।।

(बृहद्विष्णुस्मृति 5/187-188)

"जो मनुष्य तलवार लेकर मारने के लिए, विष देने के लिए, घर जलाने के लिए, शाप देने के लिए, मारण-अभिचार (जादू-टोना) द्वारा मारने के लिए, चुगली करके राजा से वध कराने के लिए और पत्नी का अपहरण करने के लिए उद्यत (आमादा) होते हैं, ये सब आततायी हैं।"

आततायियों की यही पहचान और लक्षण मत्स्यपुराण (227/114-119) में भी बताया गया है और मनुमहाराज की तरह आदेश दिया गया है कि आततायी के रूप में जो भी आए बिना विचारे मार डालना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से कोई पाप नहीं लगता।

वसिष्ठस्मृति (3/19-20) में कहा गया है कि आग लगानेवाला, विष देनेवाला, शस्त्र हाथ में लेकर मारने के लिए आनेवाला, धन हरण करनेवाला, खेत-हरण करनेवाला और स्त्री-हरण करनेवाला ये छः आततायी हैं और कहा गया कि यदि वेद-वेदांत का पूरा विद्वान ब्राह्मण भी आततायी होकर आवे तो उसको भी मार डालना चाहिए। उसको मारने से ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगता है।[1]

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने भी आततायियों से अपनी सम्पत्ति, अपने परिजनों एवं अपने स्वयं की रक्षा हेतु मुक़ाबला करने का आदेश दिया है और कहा है कि यदि वह इस आत्मरक्षा की लड़ाई में मारा भी जाता है तो 'शहीद' की श्रेणी में होगा। (दे॰ अबू दाऊद-4772, मुस्लिम-361, बुख़ारी-2480)

---

1. यहाँ पर एक बात स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि ऊपर धर्मशास्त्रों के जितने भी आदेशों का उल्लेख किया गया है और आगे किया जा रहा है, वह मात्र तर्क एवं प्रमाण हेतु है। इस प्रकार के या किसी भी धर्मशास्त्रीय आदेशों का पालन राष्ट्र के निर्धारित क़ानून, दण्ड-संहिता एवं विधिक मर्यादाओं का पालन करते हुए ही किया जा सकता है। किसी को भी अपने हाथ में क़ानून लेने का अधिकार नहीं है; और न ही हम इसका समर्थन करते हैं। राष्ट्र के निर्धारित कानून का उल्लंघन एक बड़ा अपराध है। इससे सभी को बचना चाहिए। —लेखक

अपराधियों के लिए धर्मशास्त्रों के प्रस्तावित कुछ और प्राणदण्ड

धर्मशास्त्रों में कई प्रकार के शारीरिक दण्ड देने का प्रावधान पाया जाता है। वे दण्ड कोड़ा मारने से लेकर वध करने तक के हैं और वे सभी दण्ड वैध समझे जाते हैं और उन्हें हिंसा में नहीं गिना जाता। यथा मनुस्मृति के नौवें अध्याय में है कि यदि कोई तालाब को नष्ट कर दे तो उसे पानी में डुबोकर या कोई सख्त दण्ड देकर मार डालना चाहिए तथा कोठार (भण्डार) और शस्त्रगार को नष्ट करनेवाले और हाथी-घोड़ा, रथ के चुरानेवाले को भी बिना विचारे प्राणदण्ड दे देना चाहिए। (दे॰ मं॰ 279-280) लगभग यही बात मत्स्यपुराण (227/172-174) में भी कही गई है। इस पुराण में व्यभिचारी के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसे शीघ्र ही मार डालना चाहिए। (मत्स्य पु॰ 227/124-127) परस्त्रीगामी पुरुष के सम्बन्ध में मनु महाराज का कहना है—

पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्योत पापकृत।।

(मनुस्मृति : 8/372)

"पापी परस्त्रीगामी पुरुष को राजा तपाए हुए लोहे की शय्या पर सुलाकर ऊपर से लकड़ी रखवा दे, जिसमें वह पापकर्ता जलकर खाक हो जाए।"

इसी प्रकार मनु महाराज उस स्त्री के लिए मृत्युदण्ड (सबके सामने कुत्तों को खिला देने) का प्रावधान करते हैं जो अपने धन व किसी योग्यता के अभिमान में आकर अपने पति का निरादर करे और परपुरुष के साथ व्यभिचार करे। (दे॰ मनुस्मृति 8/371) यही दण्ड महर्षि गौतम ने भी प्रस्तावित किया है, किन्तु महर्षि गौतम जी ने स्त्री का उच्च वर्ण और पुरुष का निम्न वर्ण होने की स्थिति की शर्त लगाई है। (दे॰ गौतम स्मृति 24/4)

इसी तरह अन्य शारीरिक दण्ड के प्रावधान धर्मशास्त्रों में अलग-अलग अपराध के सम्बन्ध में पाए जाते हैं। जैसे चोर के हाथ काट देने के बाद उसे मृत्यु दण्ड दिया जाए,[1] कृषि के साधनों को नष्ट करनेवालों को उनके गले

1. दे॰ मनु॰ 9/276

में पत्थर बाँधकर जलसमाधि के साथ मृत्यु-दण्ड दिया जाए। जो व्यक्ति न जमनेवाले ख़राब बीज को अच्छा बताकर या अच्छे के साथ ख़राब बीज मिलाकर बेच दे, गाँव की मर्यादा को नष्ट करे तो ऐसे पापी का अंग-भंग करके मरण तुल्य सज़ा दी जाए या वध कर दिया जाए।[1]

किसी भी देश के द्वारा अपने यहाँ के अपराधियों को दिया गया मृत्युदण्ड भी हिंसा नहीं माना जाता, जबकि इसमें भी किसी व्यक्ति को शारीरिक दण्ड के साथ उसकी हत्या की जाती है।

कई अवसरों पर पशुओं का वध और अहिंसा

हमारे कई सम्प्रदायों, जातियों और धर्मों में ऐसी प्रथाएँ पहले प्रचलित थीं और कतिपय स्थलों पर आज भी प्रचलित हैं कि उनके यहाँ पशुओं की बलि दी जाती है। पशुओं या जीवित प्राणियों की हत्या शारीरिक हिंसा की श्रेणी में आती है। कुछ लोगों की दृष्टि में हिंसा से अभिप्राय यही हिंसा है और इसी के आधार पर हमारे कई भारतीय सम्प्रदायों और धर्मों में मांस-भक्षण का सख़्त निषेध पाया जाता है। लेकिन यदि धर्मशास्त्रों का गहराई के साथ अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि सभी परिस्थिति में यह हिंसा, हिंसा नहीं मानी जाती। हमारे कई धर्मशास्त्रों में जहाँ एक ओर मांस-भक्षण का सख़्त निषेध पाया जाता है, वहीं कई धार्मिक अनुष्ठानों और अवसरों पर अनेक प्रकार के पशुओं की बलि अर्थात् पशुओं के वध करने की अनुमति, और मांस-भक्षण की भी पूरी छूट—का होना प्रतीत होता है। अर्थात् कई अवसरों पर किए गए पशुओं के वध को हिंसा नहीं माना गया।[2] उदाहरणार्थ—

यज्ञार्थं पशवः सृष्टा स्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तास्माद्यज्ञे वधोऽवधः।।

(मनुस्मृति 5/39)

---

1. मनु॰ 9/279, 9/291
2. स्पष्ट रहे कि यहाँ किसी के धर्म का अपमान व उपहास करना या किसी की आस्था को ठेस पहुँचाना हमारा कदापि कोई ध्येय नहीं है। यहाँ तर्क हेतु मात्र प्रमाण देना मूलोद्देश्य है। पाठकों से भी अनुरोध है कि लेखाध्ययन भी इसी दृष्टिकोण से करें।

"ब्रह्मा ने यज्ञ के लिए पशुओं को स्वयं बनाया है और यज्ञ सम्पूर्ण संसार की उन्नति के लिए है; इस कारण यज्ञ में पशु का वध (वधजन्य दोष न होने से) वध नहीं है।[1]

औषध्यः पशवो वक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा।
यथार्थ निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृति पुनः।।

(मनुस्मृति 5/40)

"औषधि, पशु, वृक्ष, कछुए आदि और पक्षी ये सब यज्ञ के निमित्त मारे जाने पर फिर उत्तम योनि में जन्म ग्रहण करते हैं।"[2]

यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः।
भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुराः।।
बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम्।
पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च ।।

(मनुस्मृति 5/22-23)

"द्विज यज्ञ के लिए तो अवश्य रक्षणीय माता-पितादि की रक्षा के लिए शास्त्रविहित पशु-पक्षियों का वध करे। ऐसा अगस्त्य ऋषि ने पहले किया था। क्योंकि पहले भी मुनियों तथा ब्राह्मण-क्षत्रियों के यज्ञों में (शास्त्रानुसार) भक्ष्य पशु-पक्षियों का पुरोडाश (हविष्य-हवि) बना था, (अतः शास्त्र-विहित पशु-पक्षियों का वध—यज्ञ के लिए करना चाहिए।)"[3]

एष्वर्थेषु पशून्हिंसन्वेदतत्त्वार्थविद् द्विजः।
आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम्।।

(मनु॰ 5/42)

---

1. अनुवादक : श्री पं॰ हरगोविन्द शास्त्री, प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, संस्करणः पुनर्मुद्रित, वि॰ सं॰ 2063
2. अनुवादक : पं॰ ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी, प्रकाशकः रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, सं॰-छठा, सन् 2002
3. अनुवादक : श्री पं॰ हरगोविन्द शास्त्री, प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, संस्करण : पुनर्मुद्रित वि॰ सं॰ 2063

"उपरोक्त (5/41) कर्मों में पशु की हिंसा करनेवाले वेदज्ञ-ब्राह्मण अपने को और उस पशु को उत्तम गति प्राप्त कराता है।"[1]

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे।
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।।

(मनु॰ 5/44)

"इस चराचर जगत् में जो हिंसा वेद-सम्मत है, उसे हिंसा नहीं समझे, क्योंकि वेद से ही धर्म निकला है।"[2]

ज्ञात हुआ कि धर्मशास्त्रों और वेदानुसार कुछ पशुओं का वध हिंसा नहीं है और न ही यह धर्मविरुद्ध है। संभवतः इसी प्रकार की धारणा इस्लाम धर्म की भी है कि जिसके आधार पर अरबी महीना 'ज़िलहिज्जा' में मुस्लिमों द्वारा मनाया जानेवाला त्योहार—ईदुल-अज़हा—जिसमें पशुओं की बलि यानी क़ुरबानी का विधान है और उनके यहाँ यह अहिंसा मानी जाती है। क्योंकि इस्लाम में आवश्यकतानुसार पशु-वध की अनुमति प्राप्त है, अतः सामान्य परिस्थिति में भी भक्ष्य पशु-पक्षियों के वध को इस्लाम में अहिंसा ही समझा जाता है।[3] यद्यपि कुछ अन्य धर्मग्रन्थ भी मांस को सामान्य परिस्थिति में भी खाने की अनुमति देते प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ मनुस्मृति में है—

चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः।
अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः।।

(5/29)

---

1. अनुवादक : श्री पं॰ हरगोविन्द शास्त्री, प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, संस्करण : पुनर्मुद्रित वि॰ सं॰ 2063
2. उपरोक्त
3. स्पष्ट रहे कि हमारा उद्देश्य माँसाहार के सम्बन्ध में विस्तृत वार्ता करना नहीं है। यहाँ तो केवल यह बताना है कि मानव-आवश्यकता के लिए धर्म-ग्रन्थों ने पशु-वध की अनुमति दी है और इसे हिंसा की श्रेणी में नहीं रखा है। अलबत्ता अनावश्यक 'पशु-पक्षियों' का वध या किसी भी जीव को सताना चाहे वह मनोरंजन के लिए ही हो, किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। ऐसा हमारा मानना है।

अर्थात् "चर (चलने-फिरनेवाले—मृगादि) जीवों के अचर (नहीं चलने-फिरनेवाले—तृण, लता आदि), दाँतवाले (व्याघ्र, सिंह आदि) जीवों के बिना दाँतवाले (हिरण आदि) जीव, हाथसहित (मनुष्य आदि) जीवों के बिना हाथवाले (मछली, पशु, पक्षी आदि) जीव और शूरवीर (व्याघ्र, सिंह आदि) जीवों के भीरू (डरनेवाले—हाथी, मृग आदि) जीव खाद्य (भक्ष्य) हैं।"[1]

यानी चलनेवाले जीव; न चलनेवाले जीव—घास, लता, पेड़-पौधे आदि को, दाँतवाले जीव—शेर, चीते, सिंह, बाघ आदि बिना दाँतवाले जीव—हिरन, मृग आदि को, हाथवाले यानी मनुष्य—बिना हाथवाले जैसे मछली, पशु, पक्षी आदि को और शक्तिशाली जीव—शेर आदि; डरनेवाले जीव यानी मृग आदि को खा सकते हैं। इनके खाने में कोई दोष नहीं है। इस हेतु मनुस्मृति स्वयं तर्क देती है। इसके पाँचवें अध्याय में है—

नात्ता दुष्यत्य दन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहन्यपि।
धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तार एव च।।

(मनु॰ 5/30)

"प्रतिदिन भक्ष्यजीवों को खानेवाला भी भक्षक दोषी नहीं होता है, क्योंकि ब्रह्मा ने ही भक्ष्य तथा भक्षक—दोनों जीवों को बनाया है।"[2]

ज्ञात हुआ कि आवश्यकतानुसार, विशिष्टतः मानव-हितार्थ किसी भी प्राणी या जीव की हत्या व वध हिंसा नहीं है, बल्कि अहिंसा की श्रेणी में है। लेकिन अकारण और अनावश्यक किसी भी प्राणी या जीव को सताना या वध करना अवश्यतः हिंसा की श्रेणी में आना चाहिए।

मनुष्य जगत् का शीर्ष है

इस जगत् में मनुष्य को जो स्थान प्राप्त है, वह देह में जिस प्रकार आत्मा का स्थान है, वही मनुष्य का है। यदि मनुष्य है तो जगत् सार्थक है और यदि

---

1. अनुवाद : पं॰ ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी एवं हरगोविन्द शास्त्री जी।
2. अनुवादक : श्री पं॰ हरगोविन्दशास्त्री, संस्करण : पुनर्मुद्रित, वि.सं॰ 2063

मनुष्य नहीं है तो जगत् निरर्थक, बेमाना है। हम देखते भी हैं कि जितने भी नैतिक और धार्मिक क़ानून या मर्यादाएँ लागू होती हैं, वे मात्र मनुष्य के लिए ही लागू होती हैं। इसी लिए हिंसा और अहिंसा का नियम, दोष व महत्व भी मनुष्य की हिंसा और अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में ही देखा जाना चाहिए। शास्त्रों के अध्ययन से इसी तथ्य की पुष्टि भी होती है। उदाहरणतः स्वर्ग और नरक की धारणा मात्र मनुष्य के लिए ही पाई जाती है कि यदि मनुष्य ईश्वरीय अनुज्ञा और विधान के अनुकूल जीवन-यापन करता है तो उसे स्वर्ग का शाश्वत सुखधाम प्राप्त होगा और यदि वह ईश्वर की अनुज्ञा और क़ानून के विरुद्ध जीवन-यापन करता है तो उसे 'नरक' जो दुखों और कष्टों से भरा हुआ है, मिलेगा।

मनुष्य के महत्व को व्यक्त करते हुए भागवत महापुराण में कहा गया है—

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः।।

(11/2/29)

अर्थात् "मनुष्य देह क्षणभंगुर होने पर भी जीव के लिए उसका पाना दुर्लभ है।"

महाभारत में कहा गया—

न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्।।

(12/299/20)

"मनुष्ययोनि से बढ़कर कोई उत्तम योनि नहीं है।"

रामचरित मानस में भी है—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथहि गावा।।

(उ.का. 43/4)

"बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है। सब ग्रंथों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है।"

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।।

(उ.का. 121/5)

"मनुष्य शरीर के समान कोई शरीर नहीं है। चर-अचर सभी जीव उसकी याचना करते हैं।"

नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी।।

(उ.का. 121/5)

"यह मनुष्य-शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देनेवाला है।"

क़ुरआन में कहा गया—

व ल-क़द् कर्रम्-ना बनी आ-द-म।।

(सूरा-17 बनी इसराईल, आयत-70)

अर्थात् "(ईश्वर ने कहा) हमने मनुष्य को (जगत् में) श्रेष्ठता प्रदान की है।"

यानी मनुष्य को जगत् की समस्त वस्तुओं में शीर्ष स्थान प्राप्त है।

बाइबल में मनुष्य के सम्बन्ध में कहा गया—

"जब परमेश्वर ने मनुष्य की सृष्टि की तब अपने ही स्वरूप में उसको बनाया।" (उत्पत्ति 1/26, 5/1)

अर्थात् मनुष्य ईश्वर का प्रतिरूप है और यह विशिष्टता केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। यही बात बाइबल की किताब प्रथम कुरिन्थियों (11/7) में भी कही गई है।

यदि शारीरिक संरचना की दृष्टि से भी देखा जाए तो ज्ञात होता है कि मनुष्य शारीरिक संरचना की दृष्टि से भी जगत् के समस्त प्राणियों की तुलना में अपनी एक विशिष्टता और श्रेष्ठता रखता है। क़ुरआन में इस तथ्य को व्यक्त करते हुए ईश्वर के वचन हैं—

लक़द् ख़-लक़नल् इन्सा-न फ़ी अ-ह-सनि तक़वीम।।

(सूरा-95, अत्तीन, आयत-4)

अर्थात् "हमने (यानी ईश्वर ने) मनुष्य को सर्वोत्तम संरचना के साथ पैदा किया है।"

क़ुरआन में ही एक और स्थान पर फ़रिश्तों को सम्बोधित करते हुए (ईश्वर के शब्दों में) कहा गया है कि "पृथ्वी पर मैं अपना ख़लीफ़ा अर्थात् प्रतिनिधि पैदा कर रहा हूँ।" (दे॰ क़ुरआन 2/30) और सभी जानते हैं कि प्रतिनिधि वह होता है जिसका वह भेजा हुआ होता है उसको उस भेजनेवाले की समस्त शक्तियाँ और अधिकार प्राप्त होते हैं। अपने भेजनेवाले के गौरव और स्वाभिमान एवं उच्चता को बनाए रखना उसका प्रथम कर्तव्य होता है। चूँकि क़ुरआन मनुष्य को ईश्वर का प्रतिनिधि कह रहा है और ईश्वर जगत् का शीर्षतम् अधिकारी, सत्ताधारी, स्वामी और अधिपति है, इसलिए मनुष्य भी जगत् की समस्त वस्तुओं में श्रेष्ठतम् और स्थानापन्न अधिपति का स्थान रखता है। वह किसी भी वस्तु का दास नहीं हो सकता, अगर दास है तो मात्र परमेश्वर का। इसी लिए क़ुरआन में मनुष्य को ईश्वर के अलावा किसी भी दूसरी वस्तु के सामने नतमस्तक होने को, या अपना दासभाव व्यक्त करने को ईश्वर का अपमान एवं सख़्त अपराध ठहराया गया है। (दे॰ क़ुरआन 4:48) क़ुरआन में कहा गया है कि संसार भर की हर वस्तु उसी एक परमेश्वर के समक्ष नत-मस्तक है, वह उद्दण्डता नहीं दिखाती—

> "पृथ्वी पर और आकाश में जितने भी जीवधारी हैं और जितने फ़रिश्ते, सब ईश्वर के समक्ष नतमस्तक हैं। वे कदापि उद्दण्डता नहीं दिखाते अपने पालनहार से जो उनके ऊपर है, डरते हैं और जो कुछ आदेश दिया जाता है उसी के अनुसार कार्य करते हैं।"
>
> (क़ुरआन, 16/49-50)

उपनिषद् कहती है—

तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कञ्चन।।

(कठोप॰ 2/3/1)

अर्थात् "समस्त लोक उसी (ईश्वर) का आश्रय ग्रहण करते हैं। उसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता।"

अतः यदि मनुष्य सिर झुकाएगा तो मात्र ईश्वर के सामने ही सिर झुकाएगा। हाँ, क्योंकि जगत् की समस्त चीज़ें ईश्वर ने ही पैदा की हैं

अतएव उन समस्त वस्तुओं का वह सम्मान करेगा, उनका उपभोग भी वह ईश्वर की इच्छानुसार ही करेगा। वह किसी भी वस्तु का दुरुपयोग नहीं कर सकता और न ही ईश्वरीय विधि-विधान एवं क़ानून में हस्तक्षेप करने का अधिकार रखता है। इस सम्बन्ध में प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य के समान है और सभी को समानाधिकार प्राप्त है; न कोई किसी से श्रेष्ठ है और न कोई किसी से निम्न। अतः मानवीय स्तर पर समस्त मनुष्य श्रेष्ठता, प्रतिष्ठा और सम्मान में एक समान हैं। सम्पूर्ण मनुष्यों का स्वामी, अधिपति, पूज्य और प्रभु एक ही है। अतः हम सभी उसी के अधीन रहकर एक-दूसरे का यथोचित सम्मान, सहयोग एवं प्रेम करें। यह हमारे लिए बन्धुत्व, साहचर्य एवं भातृत्व का एक स्पष्ट बौद्धिक आधार भी है।

हिंसा-अहिंसा का मुख्यतः सम्बन्ध मनुष्य से

अब यदि इस तथ्य को दृष्टि में रखकर हिंसा और अहिंसा पर विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि जिस हिंसा की शास्त्रों ने सख़्ती के साथ निन्दा की है, वह मनुष्य के प्रति अपनाई जानेवाली हिंसा यानी मनुष्य की हत्या है और जिस अहिंसा के महत्व का गान धर्मशास्त्रों ने किया है, वह मनुष्य के प्रति अपनाई गई अहिंसा यानी मनुष्य की जान बचाना और उसकी रक्षा करना है। क्योंकि मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ संरचना एवं सृष्टि है और उसको जगत् में शीर्षतम स्थान प्राप्त है, इसलिए मनुष्य की प्राथमिकता के बाद ही जगत् के किसी भी जीव या प्राणी के प्रति हिंसा या अहिंसा का महत्व शेष रहता है। ऐसा नहीं है कि मनुष्य के मुक़ाबले अन्य प्राणियों की रक्षा की जाएगी। यह ईश्वरीय विधान का उल्लंघन और स्वयं मनुष्य की प्रतिष्ठा के विरुद्ध होगा कि अन्य प्राणियों की रक्षार्थ मनुष्य की हत्या की जाए। यदि किसी अन्य प्राणी की रक्षा हेतु किसी मनुष्य की हत्या की जाती है तो यह धर्मशास्त्रों और ईश्वर की दृष्टि में जघन्य अपराध और पाप होगा।

रक्षा के सन्दर्भ में भले लोगों को प्राथमिकता

सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों में रक्षा के सन्दर्भ में मानवजाति अर्थात् समस्त मनुष्यों को प्राथमिकता दे देने के पश्चात् पुनः मानव-जगत् में उन मनुष्यों

की रक्षा के विषय में प्राथमिकता दी जाएगी जो सुचरित्र, साधुवृत्त, सज्जन, आचारवान, सुशील, सुकर्मी, नीतिपरायण, धर्मपरायण एवं ईश्वर पर निश्छल आस्था रखनेवाले, शीलवंत, शिष्टाचारी, शान्तिप्रिय, परोपकारी और मानव-सेवक होंगे। इसके विपरीत दुष्ट, अनाचारी, आचारभ्रष्ट, ज़ालिम, अत्याचारी, कुमार्गी, कुकर्मी, उपद्रव और उत्पात मचानेवाले, वृषल, व्यभिचारी, पतित, क़ातिल और ख़ून-ख़राबा करनेवालों को मानव-जगत् में गौण-स्थान प्राप्त होगा और इतना ही नहीं, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर समाज की सफ़ाई, शान्ति एवं सुधार हेतु उन्हें शारीरिक दण्ड भी दिया जाएगा और शारीरिक दण्ड में क़ैदी बनाकर रखने से लेकर—मृत्युदण्ड तक दिया जा सकता है।

प्रत्येक देश में उनकी अपनी लागू दण्ड-संहिताएँ (Penal Code) इसी उद्देश्य से बनाई गई हैं कि दुष्ट दुराचारी, चरित्रहीन और नीच अपराधी लोगों को दण्डित करके समाज की सफ़ाई की जाए तथा समाज के आचारवान, सुचरित्र और भले लोगों की रक्षा की जाए। श्रीमद्भगवद्गीता (4/7-8) में श्रीकृष्ण जी ने भी अपने आने का यही उद्देश्य बताया है।

निर्दोष की हत्या एक जघन्य अपराध है

अतएव सभी के साथ न्याय और सुआचरण का व्यवहार करना ही धर्म है। धर्म की रक्षार्थ यह नीति हमें सामाजिक सुधार और जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनानी होगी। अतः किसी को भी दण्ड देने में न्यायनिष्ठता और निष्पक्षता का पूरी सख़्ती के साथ पालन करना होगा। अन्यथा किसी पक्षपात या शत्रुता में आकर अन्यायपूर्ण किसी भी निर्दोष को यदि दण्ड दिया गया और दण्ड-योग्य अपराधी को छोड़ दिया गया, दण्ड नहीं दिया गया तो यह धर्मशास्त्रों और मानवता की दृष्टि में भी सभी अपराधों में सबसे बढ़कर जघन्य अपराध और अधर्म है। इस प्रकार के अन्यायी न्यायाधीश (राजा) को जीते-जी इस लोक में अपयश (निन्दा एवं थू-थू) मिलती ही है और परलोक में नरक में जाता है। मनुस्मृति में है—

अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति।।

(8/128)

अर्थात् "अदण्डनीयों (निर्दोषों) को दण्ड देनेवाला और दण्डनीयों (अपराधियों) को छोड़ देनेवाला राजा (न्यायाधीश) इस लोक में अपयश (बदनामी) पाता है और (मरने के बाद) नरक में जाता है।"

स्कन्दपुराण में कहा गया है कि किसी निर्दोष को मारनेवाला राजा (न्यायधीश) सबसे बड़ा पापी है।[1] किसी निर्दोष को प्रताड़ित करनेवाले के सम्बन्ध में इसी स्कन्दपुराण में कहा गया है कि किसी निर्दोष को ताड़ित करनेवाला उसके शरीरस्थ (शरीर में विद्यमान) पाप को प्राप्त करता है।[2] अर्थात् दण्डित किया जा रहा व्यक्ति ने यदि वह अपराध नहीं किया है जिसकी सज़ा उसे दी जा रही है, तो प्रताड़ित करनेवाले के सिर पर उस उत्पीड़ित के अन्य गुनाह व पाप स्थानान्तरित कर दिए जाते हैं। शिव महापुराण (5/5/25) में कहा गया है कि किसी निर्दोष को दूषित करने (अर्थात् उसपर मिथ्या-दोषारोपण करने) वाला मनुष्य ब्रह्महा[3] (के तुल्य पापी) होता है।

क़ुरआन किसी भी निर्दोष व्यक्ति की हत्या या प्राणदण्ड के सम्बन्ध में कहता है—

मन् क़-त्त-ल नफ़्सम् बिग़ैरि नफ़सिन् औ फ़सादिन् फ़िल अर्ज़ि फ़-क-अन् नमा क़-त्त-लन्ना-स जमी-आ।।

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-32)

अर्थात् "जिसने किसी मनुष्य को हत्या के बदले या पृथ्वी पर फ़साद फैलाने के सिवा किसी और वजह से (निर्दोष को) क़त्ल कर डाला, उसने मानो कि समस्त मनुष्यों का क़त्ल कर डाला।"

यानी क़ुरआन की दृष्टि में एक निर्दोष व्यक्ति को प्राणदण्ड देने या क़त्ल

1. पुराण-विषयानुक्रमणी, भाग-2 (विधि एवं आचार), पृष्ठ-596, संस्करण : प्रथम, सन् 1993 ई०, प्रकाशक : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5
2. पुराण-विषयानुक्रमणी, भाग-2 (विधि एवं आचार), पृष्ठ-596, संस्करण : प्रथम, सन् 1993 ई०, प्रकाशक : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5
3. ब्रह्मज्ञ एवं ब्रह्मत्व को प्राप्त निर्दोष ब्राह्मण की हत्या करनेवाला महापापी।

कर डालने का पाप समस्त मनुष्यों का क़त्ल कर डालने के पाप के बराबर है। अतः ईश्वर का डर रखकर और इतने बड़े पाप को ध्यान में रखकर ही किसी भी मनुष्य के क़त्ल या प्राणदण्ड का निर्णय लेना चाहिए। यह तथ्य हमारी न्याय करनेवाली संस्थाओं और न्याय के उच्चतम पदों पर बैठे लोगों के लिए अनिवार्य कर्तव्य एवं दिशानिर्देश का महत्व रखता है। यह बात उन लोगों के लिए भी ध्यान रखने की है, जो किसी भी व्यक्ति को दण्ड दिलाने का साधन बनते हैं। यथा—पुलिस विभाग, अन्वेषण व जाँच ब्यूरो और मुखबिर से लेकर सामान्य व्यक्ति तक जो साक्षी बनते हैं। मानव-समाज के लिए यह कलंक एवं दानव-वृत्ति है कि जैसा कि कुछ लोग पक्षपात और भेदभाव में आकर अपने से भिन्न किसी भी समुदाय या लोगों के विरुद्ध पहले शत्रुतः झूठी अफ़वाह फैलाते हैं और फिर अफ़वाह में आ चुके लोगों के सहयोग से वही अफ़वाह फैलानेवाले शरारती तत्व हमला बोल जाते हैं और झूठा आरोप लगाकर ज़ुल्म-ज़्यादती ही नहीं, बल्कि हत्या और ख़ून-ख़राबा करते हैं। इसी प्रकार बम ब्लास्ट करके निर्दोषों की जान लेनेवाले आतंकी, जो आतंक फैलाते और निर्दोषों की हत्या करते हैं—मानवता एवं ईश्वर की दृष्टि में कुत्सित श्रेणी के जघन्य अपराधी हैं। ऐसे सभी दुष्ट लोग मानव-समाज के अत्यन्त निकृष्ट, अधम और चलते-फिरते मानव-रूप में दरिंदे पशु हैं, जिनको किसी भी चीज़ का भय नहीं आता। खेद तो उस समय और अधिक होता है जब शासक वर्ग भी कभी-कभी अपनी निष्ठुरता का प्रमाण देता हुआ टुकुर-टुकुर देखता रहता है और देखता ही नहीं रहता बल्कि कभी-कभी अप्रत्यक्षतः उन दुष्टों का सहयोग व समर्थन भी करता है।

निर्दोषों को सताने एवं हत्या करने का परिणाम

भविष्य पुराण में अन्यायी, निष्ठुर और पाषाण-हृदय शासकों के प्रति बड़ी सख़्त सज़ा सुनाई गई है कि मृत्यु के उपरांत वे अत्यन्त दर्दनाक नरक में डाले जाएँगे। जब उन्हें नरक में डाला जाएगा, तो कहा जाएगा—

भोभो नृपा दुराचाराः प्रजाविध्वंस कारिणः।
अल्प कालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम्।।

राज्यलोभेन मोहाद्वा बलदन्यायतः प्रजाः।
यत्पीड्श्चिताः फलं तस्य भुञ्जध्वमधुना नृपाः।।
(भविष्य॰ 4/6/78-79)

"हे मही पतिगण (अर्थात् शासन करनेवाले लोगो)! अपनी दुर्बुद्धि एवं बल से गर्वित होकर तुम लोगों ने अपने कर्मों द्वारा यहाँ (नरक में) प्रस्थान किया है तथा अपने दुराचारों द्वारा प्रजाओं को निर्मूल किया है। राज के उस अल्पकालीन भोग करने के लोभ से इस प्रकार कर्म क्यों किया और राज्य-लोभ, मोह, बल, अथवा अन्याय से प्रजाओं को पीड़ित क्यों किया? अब उसके समुचित फलों का उपभोग करो।"

निर्दोषों की आह!

फिर यह भी सर्वसत्य है कि ईश्वर के यहाँ देर है, अन्धेर नहीं अर्थात् अन्याय नहीं। ईश्वर अवश्य न्याय करता है। वह बेबस और निर्दोषों की आह अवश्य सुनता है। तुलसी जी ने कहा है—

तुलसी आह ग़रीब की, हरि सों सही न जाय।
मुई खाल की फूँक सों लोहा भस्म होइ जाय।।
(तुलसी शब्दावली)

अर्थात् "हे तुलसी ग़रीब की आह, जो उसके दिल से बेबसी और असहाय की दशा में निकलती है, वह हरि यानी ईश्वर तक पहुँचती है और ईश्वर इसे सहन नहीं करता, जिस अत्याचार और अन्याय से पीड़ित होकर वह ग़रीब अपने दिल से आह निकालता है, वह तबाह व बरबाद कर देनेवाली होती है, जिस प्रकार मृत-चर्म के पंखे से कठोर लोहा भस्म हो जाता है।"

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा—

व-त्तक़ि दअ़्व-तल् मज़्लूमि फ़-इन्नहु लै-स बैनहु व बैनल्लाहि हिजाब।।

(बुख़ारी-1496, 4347, मुस्लिम-121,
अबू-दाऊद-1584, निसाई-2523)

अर्थात् "और उत्पीड़ित (असहाय) की आह से डरो कि उसके और ईश्वर के मध्य कोई रुकावट नहीं होती।"

और कहा—

"उत्पीड़ित की बद्दुआ चिनगारियों की भाँति आसमान पर जाती है। (अतः बेबस की बद्दुआ से बचा करो।)"

(सहीह अबू-जामेअ : 118)

ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया—

स्वान्तर्दुःखेन दुःखार्तो यो यं शपति निश्चितम्।
तं शापं खण्डितुं शक्तो न विधाता जगत्पतिः।।

(कृ॰ज॰पू॰ 30/99)

अर्थात् "अन्तरात्मा के दुख से दुखी होकर जो जिसको शाप देता है, उसके शाप का खण्डन जगत्पति विधाता भी नहीं करेगा।"

यानी कोई निर्दोष पीड़ित जब बेबसी में दिल से आह निकालता है तो उसकी आह को सृष्टि का रचयिता विधाता (ईश्वर), जिसकी दृष्टि में समस्त मानवजाति एक समान है और जो न्यायधीशों का न्यायधीश है—रद्द नहीं करता। वह उसकी पुकार को अवश्य सुनता है। उसका जब फ़ैसला लागू होता है तो ज़ालिम और अत्याचारी तबाह व बरबाद होकर रह जाते हैं।

शासन के अधिकारियों को पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) सख़्ती के साथ निर्देश दिया करते थे और कहा करते थे—

"पीड़ित की बद्दुआ से डरते रहना; क्योंकि उसके और अल्लाह (ईश्वर) के मध्य कोई पर्दा नहीं होता।"

(हदीसशास्त्र बुखारी, नं॰-2448)

'परदा नहीं होता' से अभिप्राय यह है कि पीड़ित जब भी आह निकालता है, तो उसकी आह ईश्वर अवश्य सुनता है। उसकी 'आह' का फल आने में देर भले हो जाए, लेकिन ज़ालिम पर ईश्वर का प्रकोप अवश्य टूटता है और ज़ालिम इहलोक में ही जीवन के किसी-न-किसी चरण में अवश्यतः

ईश्वरीय प्रकोप का भागी होता है। अत्याचार चाहे अपनों पर हो या ग़ैरों पर, अपने धर्म का माननेवाले पर हो या ग़ैर-धर्म के माननेवाले पर हो सभी पर अवैध और वर्जित है, यहाँ तक कि कोई कुधर्मी, अधर्मी या नास्तिक ही क्यों न हो, उस पर भी अत्याचार वर्जित है। किसी पर भी ज़ुल्म व अत्याचार यदि किया गया और उसके दिल से आह निकली तो वह भी मनुष्य (ज़ालिम) को तबाह व बरबाद कर देगी। उसकी आह भी बेकार नहीं जाएगी। पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कहा—

> लोगो! पीड़ित की बद्दुआ से बचो, चाहे वह अधर्मी ही क्यों न हो। निस्संदेह उसकी आह व बद्दुआ के ईश्वर तक पहुँचने में कोई रुकावट नहीं होती।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

अर्थात् जब वह पीड़ित बद्दुआ करता या आह निकालता है तो उस पीड़ित की बद्दुआ और आह ईश्वर के यहाँ स्वीकार अवश्य कर ली जाती है, चाहे वह किसी धर्म, पंथ या राह पर चलनेवाला हो। अतः किसी को भी सताने से पहले कई बार सोच लेना चाहिए।

धोखा न खाएँ

कभी-कभी शक्ति के घमण्ड में उन्मत्त (मतवाला या नशे में चूर) पापी पाप और अत्याचार करता जाता है और बदले में उसे तरक़्क़ी मिलती जाती है। यह दशा देखकर लोग और वह अत्याचारी दुष्ट स्वयं यह समझने लगता है कि ज़ुल्म व अत्याचार का कोई कुफल व दुष्परिणाम नहीं है। इस प्रकार के अपने किए गए किसी भी कुकृत्य एवं पापकर्म के तुरन्त बाद के कुछ अच्छे परिणामों को देखकर मनुष्य को धोखा नहीं खाना चाहिए कि उसके पाप ने उसका पीछा छोड़ दिया है और उसके कुकृत्य उसका कुछ नहीं बिगाड़ पा रहे हैं। यह मनुष्य की सोच का धोखा है। सत्य यह है कि पापी का पाप अपना कुफल अवश्य दिखाता है। महाभारत के शब्दों में—

फलत्येव ध्रुवं पापं गुरु भुक्तमिवोदरे।। (आदि॰ पर्व 80/3)

अर्थात् "जैसे खाया हुआ गरिष्ठ अन्न तुरन्त नहीं, तो कुछ देर बाद

अवश्य ही पेट में उपद्रव करता है, उसी प्रकार किया हुआ पाप भी निश्चय ही अपना फल देता है।"

यही बात शुक्राचार्य जी ने वृषपर्वा[1] से भी कही थी–

नाधर्मश्चरितो राजन् सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्त्यमानो हि कर्तुर्मूलानि कृन्तति।।

(महाभा॰ 1/80/2)

अर्थात् "हे राजन! जो अधर्म किया जाता है, उसका फल तुरन्त नहीं मिलता। जैसे गाय की सेवा करने पर धीरे-धीरे कुछ काल के बाद ब्याती और दूध देती है अथवा धरती को जोत-बोकर बीज डालने से कुछ काल के बाद पौधा उगता और यथासमय फल देता है, उसी प्रकार किया जानेवाला अधर्म धीरे-धीरे कर्ता की जड़ काट देता है।"

यानी पापकर्म करनेवाले की जड़ उसके पाप-कर्म करने के बाद से ही कटनी शुरू हो जाती है और जब पूरी तरह कट जाती है तो वह धराशायी होकर रह जाता है।

धर्मशास्त्रों की दृष्टि में पापी स्वयं पाक-कर्म करे या पाप- कर्म व दुष्टता का समर्थन करे तब भी वह उसी दुष्ट के समान दण्डनीय व पापी होता है। भविष्य पुराण कहता है–

यः करोति स्वयं कर्म कारयेद्वापि मोदयेत्।
कायेन मनसा वाचा तस्य चाधोगतिः फलम्।।

(4/5/83)

अर्थात् "जो मन, वाणी एवं शरीर से पापाचार करता या अनुमोदन (समर्थन या स्वीकृति) करता है, उसकी अधोगति (पतन एवं दुर्गति) अवश्य होती है।"

1. दैत्यों का यह एक शक्तिशाली राजा हुआ है। इसके पिता का नाम महर्षि कश्यप और माँ का नाम दनु था। दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य इन्हीं के नगर में रहते थे। (दे॰ महाभारत आदि पर्व)

अतः मनुष्य सदैव और हमेशा सतर्क व सचेत रहे कि उसके द्वारा किसी पर कोई अन्याय, अत्याचार न होने पाए और उसे डरना चाहिए कि किसी भी पक्षपात में आकर वह न्याय-विरुद्ध कोई फ़ैसला या निर्णय ना दे दे। क़ुरआन में न्याय के सन्दर्भ में सचेत किया गया है—

"ऐ लोगो जो ईश्वर पर अटल आस्था का दावा करते हो! न्याय के ध्वजावाहक और ईश्वर के लिए गवाह बनो! यद्यपि तुम्हारा न्याय और तुम्हारी गवाही स्वयं तुम्हारे अपने, तुम्हारे माँ-बाप और नातेदारों के विरुद्ध ही क्यों न पड़ती हो। मामले से सम्बन्ध रखनेवाला पक्ष चाहे मालदार हो या ग़रीब ईश्वर तुमसे अधिक उनका हितैषी है। अतः अपने मन की इच्छा के अनुपालन में न्याय से न हटो। यदि तुमने लगी-लिपटी बात कही या सच्चाई से पहलू बचाया तो जान रखो कि जो कुछ तुम करते हो, ईश्वर को उसकी ख़बर है। (तुम्हें उसके समक्ष उत्तर देना होगा)।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-135)

अर्थात् न्याय के ध्वजावाहक बनकर रहो, किसी भी दशा में तुम्हारे न्यायरूपी ध्वजा का नतमस्तक न होने पाए, कभी सिर झुकने न पाए। यह न्याय और गवाही चाहे तुम्हारे किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध, यहाँ तक कि स्वयं तुम्हारे ख़िलाफ़ क्यों न जाए, लेकिन न्याय का दामन कभी नहीं छोड़ना है। अगर तुमने न्याय-विरुद्ध कार्य किया तो ईश्वर के समक्ष उत्तर देना होगा और उसकी यातना झेलनी पड़ेगी।

एक और स्थान पर कहा गया—

इन्नल्ला-ह यअमुरु बिल्-अद्लि व इहसानि व ईतायि ज़िल् क़ुर्बा व यन्हा अनिल्-फ़हशाइ वल् मुंकरि वल्-बग़यि। (क़ुरआन, 16/90)

अर्थात् "ईश्वर न्याय और भलाई और नातेदारों के हक़ अदा करने का आदेश देता है और बुराई और अश्लीलता और ज़ुल्म-व-ज़्यादती से रोकता है।"

अतः मनुष्यों पर अनिवार्य किया गया है कि वे हर हालत में न्याय पर

क़ायम रहें और नेकी, भलाई और उपकार के कार्य करते रहें।

क़ुरआन में एकेश्वरवादियों अर्थात् मुस्लिमों को स्पष्टतः सचेत करते हुए कहा गया—

"ऐ लोगो, जो ईश्वर पर अटल आस्था होने का प्राकट्य करते हो! ईश्वर के लिए औचित्य पर स्थित रहनेवाले और न्याय की गवाही देनेवाले बनो। किसी समुदाय की दुश्मनी तुमको इतना उत्तेजित न कर दे कि न्याय से फिर जाओ। न्याय करो, यह ईशभक्ति और सज्जनता के अधिक अनुकूल है।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-8)

वास्तव में न्यायपूर्ण निर्णय न देना भी निर्दोष के विरुद्ध हिंसा ही है, जिसमें मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न किया जाता है। पक्षपातपूर्ण दिए गए फ़ैसले से यदि किसी को मृत्युदण्ड दे दिया जाता है तो उस अन्यायपूर्ण निर्णय में जितने भी कारिन्दे व कर्मचारी सम्मलित होते हैं और साधन बनते हैं वे सभी उस मनुष्य की हत्या के पापी होते हैं। अतः हर स्थिति में न्याय से सम्बन्धित लोगों को अपनी भूमिका बड़ी ईमानदारी के साथ निभानी चाहिए। महाराज मनु ने न्यायाधीश के लिए कहा—

यथा यमः प्रियद्वेष्यो प्राप्ते काले नियच्छति।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्।।

(मनु 09/307)

अर्थात् "जैसे यमराज समय आ जाने पर प्रिय और अप्रिय का विचार नहीं करता है, वैसे ही राजा (न्यायाधीश) अभियोगों के विचार के समय शत्रु-मित्र का भेद छोड़ करके न्यायानुसार दण्ड का विधान करे।"

मनुष्यों के हितार्थ अन्य प्राणियों की हिंसा

रक्षा के संदर्भ में सम्पूर्ण मनुष्यों को प्राथमिकता दे देने के पश्चात् ही जगत् के अन्य जीव-जन्तु एवं प्राणियों की हिंसा व अहिंसा पर विचार किया जाएगा। यहाँ भी मनुष्य के हित और अहित को दृष्टि में रखकर अन्य

प्राणियों के प्रति हिंसा व अहिंसा की कोई भी नीति अपनाई जाएगी। मानव-जीवन के हितार्थ जहाँ भी आवश्यकता होगी वहाँ किसी भी पशु-पक्षी या जीव का वध किया जाएगा, अर्थात् किसी भी प्राणी के साथ हिंसा अपनाई जाएगी और जहाँ आवश्यकता न होगी, वहाँ उनके प्रति अहिंसा का सख़्ती के साथ पालन किया जाएगा। पूर्वकाल में महापुरुषों ने भी यही नीति अपनाई है और आज भी अपनाई जाती है। मेडिकल के लैबों में शोधार्थ कई जीवों का चीर-फाड़ किया जाता है और हत्या की जाती है, जो देखने में एक प्रकार की हिंसा ही होती है, किन्तु प्रयोगशालाओं में जीवों पर इस प्रकार से प्रयोग करके बननेवाले डॉक्टर्स को कोई जीवों का हत्यारा नहीं कहता, क्योंकि वे मनुष्यों को बचाने हेतु मनुष्येत्तर (मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य) प्राणियों की हत्या करते हैं। इसी प्रकार फ़सलों को बचाने हेतु कीट-नाशक दवाओं का छिड़काव जो कीड़े-मकोड़े, जीव-जन्तुओं को मारने हेतु किया जाता है, कोई हत्या नहीं मानता, क्योंकि यह छिड़काव भी मनुष्यों के आहार की रक्षार्थ किया जाता है। मच्छरों और हानिकारक मक्खियों को मारने हेतु, जो मनुष्यों में बीमारियाँ फैलाने का कारण बनती हैं—के सन्दर्भ में भी यही विचार क्रियाशील है। अतः मनुष्य के हितार्थ मनुष्येतर किसी भी पशु-पक्षी व जानदार की हत्या, हिंसा नहीं है।[1]

अन्य धर्मों में भी इसी प्रकार की अनुमति एवं प्रावधान पाए जाते हैं, जिन्हें धर्मशास्त्रानुसार अहिंसा की ही श्रेणी में माना जा सकता है और उनके यहाँ माना भी जाता है। इस्लाम में और अन्य धर्म में मात्र यह न्यूनान्तर प्रतीत होता है कि इस्लाम एवं ईसाई धर्म में मांस-भक्षण की अनुमति सामान्य परिस्थिति में भी पाई जाती है और विशिष्ट अवसर में भी; जबकि अन्य धर्मों के ग्रंथों में अनुमति का विरोधाभास है। तदपि मुस्लिमों के अतिरिक्त अन्य समुदाय के लोगों में भी व्यवहारतः मांस-भक्षण सामान्य रूप से देखा जा सकता है। भारत में मुस्लिमों की आबादी भारत की कुल आबादी की लगभग 15% है और ये प्रायः मांसाहारी होते हैं, जबकि एक सर्वे के

1. इस हेतु मनुस्मृति 5/22, 5/27, स्कन्दपुराण 4/10/19 एवं इसी पुस्तक के पृ. 26-28 का अध्ययन किया जा सकता है।

मुताबिक़ भारत की 70% से भी अधिक आबादी मांसाहारी है अर्थात् भारत की 30% से भी कम आबादी शाकाहारी है।[1] शाकाहारियों का प्रतिशत तेलंगाना, वेस्ट बंगाल और आन्ध्र प्रदेश में और भी कम है, बल्कि नगण्य के निकट है। यहाँ शाकाहारियों का प्रतिशत मात्र 1.5 है, जबकि मांसाहारियों का औसतन प्रतिशत 98.5 है।[2] अभिप्राय यह कि भारत की जनता अप्रत्यक्षतः एवं व्यवहारतः इस बात को स्वीकार करती है कि जगत् के जीव-जन्तु मनुष्य के हितार्थ और उपयोग के लिए ही हैं। अतः आवश्यकता पड़ने पर बेखटके पशु-पक्षियों एवं मनुष्येतर प्राणियों को अपने काम में लिया जा सकता है।

मनुष्य के उपयोग या आवश्यकता के अतिरिक्त अनावश्यक किसी भी जीव का सताया जाना या किसी भी प्राणी के साथ हिंसात्मक व्यवहार करना एक समान रूप से सभी धर्मशास्त्रों और महापुरुषों की दृष्टि में प्रतिबन्धित एवं निन्दनीय है। ईश्वर के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने किसी भी जीव या प्राणी को अकारण सताना, क़ैद करके भूखा-प्यासा रखना, अनावश्यक तकलीफ़ देना, यहाँ तक कि बिना ज़रूरत वध या हत्या करना सख़्त अवैध ठहराया है। हदीसशास्त्र बुख़ारी और मुस्लिम में है कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने बताया कि एक औरत को एक बिल्ली के कारण नरक की सूचना दी गई, क्योंकि उसने उस बिल्ली को क़ैद करके रखा और उसने उस बिल्ली को न कुछ खिलाया और न पिलाया, यहाँ तक कि वह बिल्ली मर गई। अतः उस औरत को इस अपराध के कारण जहन्नम (नरक) में डाल दिया गया।[3]

इसी प्रकार किसी भी जीवधारी को मनोरंजन हेतु तीर का निशाना बनाना सख़्ती से रोका गया है।[4] हदीसशास्त्र अबू-दाऊद (हदीस नं॰-2675) में एक घटना का उल्लेख है, जिसके उल्लेखकर्ता इब्ने-मसऊद (रज़ि॰) हैं।

---

1. edtimes.in, 12 sept. 2020, by Roshni Ramesan
2. उपरोक्त
3. दे॰ हदीसशास्त्र बुख़ारी : हदीस नं॰-2365, हदीसशास्त्र मुस्लिम, हदीस नं॰-2100, 2102, 5852, 5855, 6675, 6677
4. दे॰ हदीसशास्त्र : मुस्लिम, हदीस नं॰-58; बुख़ारी, हदीस नं॰-5514

वे कहते हैं कि हम पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) के साथ एक सफ़र में थे। रास्ते में किसी मानवीय ज़रूरत से पैग़म्बर (सल्ल॰) थोड़ा दूर चले गए, तभी हमने एक लाल रंग का पक्षी देखा, जो अपने दो बच्चों के साथ था। उन बच्चों को हमने पकड़ लिया तो वह पक्षी उनके इर्द-गिर्द मँडराने लगा। इतने में पैग़म्बर (सल्ल॰) वापस आ गए। उन्होंने उस पक्षी को इर्द-गिर्द मँडराते देखा तो पैग़म्बर (सल्ल॰) समझ गए कि यह अपने बच्चों के लिए ऐसा कर रहा है। अतः पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कहा, "इस पक्षी को इसके बच्चों की वजह से किसने तकलीफ़ पहुँचाई? इसे इसके बच्चे वापस लौटा दो (और इसके बाद उसके बच्चे उसे वापस कर दिए गए)।" इसी हदीसशास्त्र की हदीस नं॰-2675 और 5268 में चीटिंयों के सम्बन्ध में भी एक घटना का उल्लेख है; जिसमें है कि कुछ लोगों ने चींटियों के बसने की जगह पर, जहाँ चींटियों का झुण्ड था, आग जला दी। जब पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) यह देखा तो तुरन्त आग बुझा देने का हुक्म दिया और कहा कि किसी को भी आग में जलाने का अधिकार मात्र ईश्वर को है, किसी भी मनुष्य को यह अधिकार नहीं कि कोई किसी जीव को आग में जलाए। एक बार पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने एक व्यक्ति को देखा कि वह ऊँट पर इतना सामान लादे हुए है कि ऊँट बड़ी मुश्किल से अपने पैर उठा पा रहा है। अतः उन्होंने जब उस ऊँट की यह दशा देखी तो उस ऊँट के मालिक पर सख़्त नाराज़ हुए और सामान कम करने को कहा और साथ ही आम उद्घोषणा कर दी कि ऊँट या और किसी भारवाहक जानवर पर उसकी सामर्थ्य और सहनशक्ति से अधिक बोझ न लादा जाए। पैग़म्बर (सल्ल॰) के साथी (सहाबी) अब्दुल्लाह के बेटे जाबिर (रज़ि॰) कहते हैं कि एक बार पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) के पास से एक गधा गुज़रा, जिसके चेहरे को दाग़ा गया था और उसके नथुनों से ख़ून बह रहा था। पैग़म्बर (सल्ल॰) को उस गधे की तकलीफ़ को देखकर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कहा, "उसपर धिक्कार है जिसने यह हरकत की।" (यानी लानत है उसपर जिसने इस गधे का यह हाल किया।) इसके बाद उन्होंने आम घोषणा कर दी कि न तो किसी पशु के चेहरे को दाग़ा जाए और न ही किसी जानदार के चेहरे पर मारा जाए।

अर्थतः यह कि जहाँ आवश्यकतानुसार जीव-हत्या यानी जीव-हिंसा की अनुमति है, वहीं अनावश्यक रूप से किसी भी जीव को कष्ट या तकलीफ़ पहुँचाने को सख़्ती से मना किया गया है। इसी प्रकार की शिक्षा बाइबल में भी हिंसा-अहिंसा के सन्दर्भ में पाई जाती है। (दे॰ बाइबल उ॰1/26-30)। हिन्दू धर्म की शिक्षा का मूल ही जीव-हिंसा से दूर रहना है। यहाँ दया, करुणा, प्रेम, वात्सल्य और नैतिक मर्यादाओं का साम्राज्य पाया जाता है। वहाँ माना जाता है—**आनृशंस्यं परो धर्मः** (अनु॰ 47/20) अर्थात् "दया सबसे बड़ा धर्म है।" लेकिन इसके उपरांत भी जैसा कि पहले चर्चा हो चुकी है कि हिन्दू धर्मशास्त्र भी आवश्यकता पड़ने पर जीव-हिंसा की छूट देते हैं। क्योंकि हिन्दू धर्म भी सम्पूर्ण जगत् में मनुष्य को ही प्रधानता देता है। अतः धर्मशास्त्रों में अहिंसा का जितना भी गुणगान और महत्व पाया जाता है, उन सबका मनुष्य और मनुष्यों में भी भले मनुष्यों की हिंसा व अहिंसा से सम्बन्ध होना प्रमाणित होता है और हमारे लिए अनिवार्य है कि हम हिंसा व अहिंसा के सन्दर्भ को मानव-समाज और मानव के प्रति अपनाए जानेवाले हिंसात्मक व अहिंसात्मक व्यवहार पर ही आधारित स्वीकार करें और महत्व दें। पशु-पक्षी व मनुष्येत्तर प्राणियों के प्रति हिंसा व अहिंसा का महत्व मानव की रक्षा के बाद ही दिया जाना चाहिए अर्थात् मनुष्येत्तर (मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य) प्राणियों के प्रति हिंसा-अहिंसा का महत्व गौण है और यही न्यायसंगत, बुद्धि-संगत और धर्मानुकूल भी प्रतीत होता। यह तथ्य उपरोक्त वार्ता से पूरी तरह सिद्ध भी हो चुका है। अब आइए देखते हैं कि अहिंसा का धर्मशास्त्रों ने क्या महत्व बताया है और क्या महिमागान किया है?

अहिंसा का महत्व

मानव-समाज में अहिंसा का बड़ा महत्व है। यही वह वस्तु है जो मानव-समाज में सुख-शान्ति और निर्भयता का वातावरण निर्मित करती है। जिस समाज में अहिंसा का साम्राज्य होगा, वहाँ अमनो-अमान, सुख-शान्ति, सुव्यवस्था और मानव-प्रेम आम होगा और बुराइयाँ विलुप्त होंगी और इसके विपरीत जहाँ अहिंसा विलुप्त होगी, वहाँ ख़ूनखराबा और तमाम बुराइयाँ आम होंगी। वस्तुतः बुराइयाँ ही हिंसा को जन्म देती हैं और हिंसा की जड़

में ये प्रमुख बुराइयाँ ही कार्यरत या उत्प्रेरक होती हैं—चोरी, झूठ, व्यभिचार, नशाख़ोरी और परिग्रह अर्थात् धन का संग्रहण इत्यादि। व्यक्ति इन्हीं में पड़कर हिंसा की ओर क़दम बढ़ाता है। यही कारण है कि सभी धर्म प्रमुख रूप से इन बुराइयों को दूर करने की शिक्षा प्रमुखता से देते हैं। वास्तव में जब व्यक्ति अहिंसा का व्रत धारण करता है तो उपरोक्त बुराइयों से दूर रहने का ही व्रत लेता है। इसी कारण अहिंसा का धर्मशास्त्रों ने बड़ा महत्व बताया है।

महाभारत में अहिंसा के महत्व को प्रकट करते हुए कहा गया है—

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः।।

(13/116/28)

अर्थात् "अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है और अहिंसा परम तपस्या है।"

अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परं फलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्।।

(महाभा॰ 13/116/29)

"अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है।"

यानी अहिंसा ही परम धर्म, परम संयम, परम दान और परम तपस्या है। अहिंसा ही परम यज्ञ और परम सुख है और अहिंसा ही परम मित्र और परम फल है। दूसरे शब्दों में यह कि जहाँ अहिंसा है वहीं परम धर्म, त्याग, दान, धैर्य, तपस्या और परम सुख-शान्ति और मित्रता है।

आश्वमेधिक पर्व में अहिंसा को श्रेष्ठ धर्म और हिंसा को अधर्म का लक्षण बताया गया है। कहा—

अहिंसा परमो धर्मो हिंसा चाधर्मलक्षणा।।

(43/21)

"अहिंसा सबसे श्रेष्ठ धर्म है और हिंसा अधर्म का लक्षण है।"

ब्रह्माण्ड पुराण (2/29/69) में कहा गया है कि त्रेता युग में हज़ारों धर्म

थे, उन धर्मों के बीच अहिंसा धर्म के पालन का ही प्रचलन था।

कुरआन एवं हदीस का जब अध्ययन करते हैं तो मिलता है कि इस्लाम में भी अहिंसा को बड़ा महत्व प्राप्त है। अहिंसा को मुक्ति का मुख्य साधन समझा गया है और इसे ऐन इबादत माना गया है। इस्लाम की धारणा है कि सम्पूर्ण मानवजाति ईश्वर का एक कुनबा यानी ईश्वर का कुटुम्ब है और कहा गया कि जो उसके कुटुम्ब से प्यार करता है, उससे ईश्वर प्यार करता है। हदीसशास्त्र में है–

अल्-ख़ल्कु इयालुल्लाहि फ़-अहब्बुल् ख़ल्कि इलल्लाहि।

(बैहक़ी : अध्याय-ईमान; मिश्कात : अध्याय-सृष्टि से प्रेम एवं करुणा)

अर्थात् "सम्पूर्ण सृष्टि (मानवजाति) अल्लाह (ईश्वर) का कुनबा यानी कुटुम्ब है। अतः ईश्वर को अपनी सम्पूर्ण सृष्टि में सबसे अधिक प्यार उस व्यक्ति से है जो उसके कुटुम्ब (कुनबे) के साथ अच्छा व्यवहार करता है।"

यहाँ सम्पूर्ण मानवजाति एवं सृष्टि को ईश्वर का कुटुम्ब कहकर हिंसा की हर गुंजाइश की जड़ काट दी गई है। अवैधतः हर प्रकार की हिंसा को प्रतिबन्धित कर दिया गया है। किसी भी मनुष्य की अवैधतः हत्या ईश्वर से विद्रोह एवं उसके आदेश का उल्लंघन ठहरा दिया गया है। दूसरे शब्दों में यह कि सम्पूर्ण सृष्टि के साथ प्रेम, करुणा एवं स्नेह से पेश आना और अच्छा व्यवहार करना ईश्वर का प्रेम प्राप्त करना है, जो भक्ति का मूलोद्देश्य भी है।

एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य की हिंसा न हो यानी तकलीफ़ न पहुँचने पाए, सम्भवतः इसी लिए क़ुरआन एवं हदीसशास्त्रों में यह शिक्षा पूरे ज़ोर के साथ पाई जाती है कि–

1. ईश्वर की बन्दगी करो, उसके साथ किसी को शामिल न करो। माता-पिता के साथ सदाचरण अपनाओ। निकट सम्बन्धियों, यतीमों, ग़रीबों के साथ अच्छे व्यवहार से पेश आओ। पड़ोसी रिश्तेदार और उस पड़ोसी से

जिससे कोई रिश्ता और पहचान नहीं है तथा निकट बैठनेवाले के साथ भी बेहतर सुलूक करो। मुसाफ़िरों और अपने सेवकों के प्रति उपकार का व्यवहार करो। निस्सन्देह ईश्वर किसी ऐसे व्यक्ति को पसन्द नहीं करता, जो अपने अन्दर धमण्ड और बड़ाई पर गुरूर करे। (दे॰ क़ुरआन, 4/36)

अर्थात् यदि व्यक्ति चाहता है कि ईश्वर उससे प्रेम करे, तो उसे चाहिए कि वह विनम्र, सेवाभाव रखनेवाला और सेवक बनकर रहे। वह हर उस कार्य से दूर रहे, जिससे किसी को भी कष्ट पहुँचे।

2. जो व्यक्ति ईश्वर (अल्लाह) और परलोक पर पूर्ण आस्था रखता है (अर्थात् मुस्लिम है) वह अपने पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करे, अपने मेहमान का सम्मान करे और जब बोले तो सदैव भलाई की बात बोले, अन्यथा चुप रहे।

(हदीसशास्त्र : मुस्लिम-176; बुखारी-6019, तिर्मिज़ी-1942)

मनुष्य जहाँ कहीं भी होता है, वह किसी न किसी के पड़ोस में होता है। जहाँ बसता है, उसके आस-पास के बसनेवाले उसके पड़ोसी होते हैं। दफ़्तर में, जहाँ काम करता है, उसके आसपास में बैठनेवाले उसके पड़ोसी होते हैं। इसी प्रकार व्यक्ति जब सफ़र करता है तो उसके बग़ल में बैठनेवाले, सामने बैठनेवाले सभी उसके अस्थाई और अजनबी पड़ोसी होते हैं। पैग़म्बर (सल्ल॰) की शिक्षा है कि इन सभी के साथ विनम्रता, भलाई और अच्छे व्यवहार से पेश आना है। कोई ऐसी हरकत नहीं करनी है कि जिससे उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट हो। यदि ऐसा किया तो वह हिंसा होगी और ईश्वर पर आस्था (ईमान) रखने के विरुद्ध होगा।

3. मनुष्य सभी के साथ अच्छे से पेश आता है, लेकिन घर में माता-पिता को तकलीफ़ देता है। इस विषय पर इस्लाम का आदेश है कि—"माता-पिता के साथ अच्छे-से-अच्छा व्यवहार करो। सभी अच्छे कर्मों में यह सबसे उत्तम कर्म है। माता-पिता के समक्ष विनम्रता से पेश आओ, उन्हें न झिड़को और न उनके सामने उफ़ तक कहो।"

(क़ुरआन, 2/83, 4/36, 17/23; हदीसशास्त्र मुस्लिम-253, 254, 256, 6238, 6513, सुनन इब्ने दाऊद 5151, 5152, तिर्मिज़ी-173)

4. जो दूसरे को नुक़सान पहुँचाएगा ईश्वर उसे नुक़सान पहुँचाएगा और जो दूसरे को तकलीफ़ देगा, ईश्वर उसे तकलीफ़ देगा। (हदीसशास्त्र)

5. सबसे अच्छे लोग वे हैं, जिनके सदाचार सबसे अच्छे हैं।
(हदीसशास्त्र, मुस्लिम ह॰नं॰ 6033)

6. सदाचार यह है कि लोगों से मुस्कुराकर मिला जाए, लोगों के प्रति हितकारी कार्य किए जाएँ और दूसरों को तकलीफ़ न दी जाएँ।
(तिर्मिज़ी 2005)

7. जो कोई दूसरे (ईशपरायण) भाई का दोष ढूँढ़ता है, ईश्वर उसका दोष (ऐब) ढूँढ़ता है और ईश्वर जिसका दोष ढूँढ़ता है, उसे रुसवा और ज़लील कर देता है। यहाँ तक कि चाहे वह घर पर ही क्यों न बैठा रहे।
(हदीसशास्त्र तिर्मिज़ी-2032)

अर्थात् किसी को तकलीफ़ पहुँचाने के लिए किसी के ऐबों को तलाशने पर नहीं लगा रहना चाहिए।

8. रास्ते से तकलीफ़ पहुँचानेवाली वस्तुओं को हटा देना ईमान के विभागों में से एक विभाग है और इतना ही नहीं, बल्कि यह सभी कर्मों में से एक श्रेष्ठ कर्म और दान (सदक़ा) है। (हदीसशास्त्र मुस्नद अहमद ह॰नं॰ 85, 86, 1350, 3611)

अहिंसा एक उत्तम शस्त्र एवं शक्ति है

अहिंसा वास्तव में चारित्रिक निर्माण का मूलाधार और बुराइयों को ख़त्म करने का एक शस्त्र भी है। यही वह शस्त्र है, जिसे अपना लेने के बाद आदमी ने बिना ख़ून-ख़राबे के बड़े-बड़े मोर्चे जीते हैं और जीते जा सकते हैं। जब कोई व्यक्ति अहिंसा की नीति निष्ठापूर्ण अपना लेता है तो अत्याचारी भी अपने अत्याचार पूर्ण आचरण पर शर्मिंदा होकर अपने अत्याचार को छोड़ने पर विवश हो जाता है। भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी और उनके साथियों ने इस रहस्य को समझ लिया था और अहिंसा की नीति पर चलकर अंग्रेज़ी ज़ालिम हुकूमत से भारत को आज़ाद करा लिया। महात्मा गाँधी जी की अहिंसा-नीति के सामने अंग्रेज़ी हुकूमत ने सिर

झुका दिया।

इस्लामिक इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ईश्वर के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने अहिंसा-शक्ति को अच्छी तरह समझ लिया था। अतः इसी नीति को अपना कर उन्होंने एक महाशक्ति संग्रहित कर ली और मक्का की विजय प्राप्त की। इस विजय में जंगें भी हुईं, किन्तु किसी भी जंग में पैग़म्बर (सल्ल॰) की अग्रसरता का उदाहरण नहीं मिलता, अर्थात् सभी युद्ध प्रतिरक्षात्मक थे। पैग़म्बर (सल्ल॰) ने अपने पूरे जीवनकाल में कुल 27 या 28 जंगें लड़ीं। इन जंगों में कुल 441 लोग मारे गए। इनमें 148 मुस्लिम और 293 ग़ैर-मुस्लिमों की संख्या थी। इन जंगों में क़ैदी भी बनाए गए थे, जिनकी संख्या 6070 इतिहास के पृष्ठों में अंकित है। (दे॰ ग़ज़वाते-रसूल्लाह सल्ल॰ पर एक इस्लामी नज़र, ले॰ मु॰ अहमद रज़ा, एडवोकेट) अगर गहन विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि प्रत्येक जंग में मारे गए लोगों की औसत संख्या 15-16 ही है और क़ैदियों की औसत 217 से 218 है। ज्ञात हुआ कि जंगों में भी अहिंसा का पालन करते हुए कम-से-कम लोगों की हत्या का प्रयास रहा। मुहम्मद (सल्ल॰) अहिंसा के कितने अधिक पक्षधर और मानवजाति के प्रति कितनी अधिक सहानुभूति रखते थे, इसका स्पष्ट दर्शन मक्का विजय के अवसर पर देखने को मिलता है कि उस अवसर पर अपने बड़े-से-बड़े शत्रु को भी क्षमा कर देने की आम घोषणा कर दी, सिवाय उसके कि जो मुक़ाबले के लिए सामने आए। हुआ यह कि कोई भी मुक़ाबले के लिए सामने नहीं आया और इतिहास की एक अनुपम विजय मक्का की जीत अंकित हुई। इसमें न शत्रुओं की सम्पत्ति जलाई गई, न उनको गिरफ़्तार किया गया और न किसी प्रकार की सज़ा दी गई। इस विशालहृदयता का पराभूत समाज पर यह पड़ा कि बाद में उन सभी ने मुहम्मद (सल्ल॰) के शुभ सन्देश को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

(दे॰ इस्लामी इंसाइक्लोपीडिया, पृ॰ 1503)

आज भी जब कोई अहिंसा के मार्ग पर चलकर शत्रुओं के प्रति भी उपकार की नीति अपनाता है, शक्तिशाली होने के उपरांत भी विनम्रता का प्रदर्शन करता है, तो हम देखते हैं कि ज़ाहिर में कोई उसका होने का एलान

चाहे न करे, लेकिन दिल से उसका अवश्य होकर रह जाता है। अतः अहिंसा एक ऐसा शस्त्र है कि उसका प्रयोग-फल अवश्यतः प्रशंसनीय होता है।

अहिंसा का आधार सत्य है

अहिंसा वास्तव में एक ऐसी नीति है, जो बहुत अधिक सहनशीलता, धैर्य और विशालहृदयता की अपेक्षा करती है। अहिंसावादी के लिए सच्चाई और सत्यपरायणता की अत्यन्त आवश्यकता होती है। महाभारत की दृष्टि में अहिंसा सत्य में ही प्रतिष्ठित होती है। वन-पर्व में कहा गया है–

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतहितं परम्।
अहिंसा परमो धर्मः स च सत्ये प्रतिष्ठितः।
सत्ये कृत्वा प्रतिष्ठां तु प्रवर्तन्ते प्रवृत्तयः।।
(207/74)

"अहिंसा और सत्यभाषण–ये समस्त प्राणियों के लिए अत्यन्त हितकर हैं। अहिंसा सबसे महान धर्म है, परन्तु वह सत्य में ही प्रतिष्ठित है। सत्य के ही आधार पर श्रेष्ठ पुरुषों के सभी कार्य आरम्भ होते हैं।"

अर्थात् 'अहिंसा' है तो 'परम और सर्वोच्च धर्म', लेकिन इसका आधार 'सत्य' है। यदि कोई व्यक्ति झूठ, फ़रेब, धोखा, छल और कपट की नीति अपनाकर अहिंसावादी होने का दावा करता है तो उसका यह दावा बिलकुल झूठा, तथ्यहीन और मनगढ़ंत है। वह व्यक्ति ढोंगी और पाखण्डी है। उसका यह ढोंग स्वयं उसके जीवन को धराशायी कर देनेवाला होता है। क्योंकि जिस मकान की बुनियाद ही न हो, उस मकान की मज़बूती दिवास्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं। अतः 'अहिंसा' हेतु सत्य और निष्कपटता का होना अनिवार्य है।

सत्य यह है कि जो सत्य और सच्चाई पर स्थित होते हैं और सच्चाई का जो क़भी दामन नहीं छोड़ते, उनका साथ जगत की हर शक्ति देने लगती है। क़ुरआन में ईश-भक्तों को आदेश दिया गया है कि वे सच्चे लोगों के साथ रहें। कहा गया–

या अय्युहल्लज़ी-न आमनुत्तक़ुल्ला-ह व कूनू म-अस्सादिक़ीन।।

अर्थात् "ऐ लोगो, जो ईश-भक्ति को अंगीकार किए हो, ईश्वर से डरो, और सच्चे लोगों के साथ हो जाओ।"

क़ुरआन की सूरा-33 अहज़ाब में कई अन्य अच्छे गुणों के होने के साथ सत्यवादी होने पर कहा गया है कि ईश्वर उनको क्षमादान, मुक्ति और बड़ा पुण्यफल अवश्य देगा।

सच्चाई पर चलने और सत्यवादी बनकर रहनेवाले और इसके विपरीत झूठ बोलने और झूठ पर ही जमे रहनेवालों के बारे में मुहम्मद (सल्ल०) के वचन हैं—

"सच्चाई एक ऐसा आचरण है, जो नेकी के मार्ग पर चलाता है और नेकीवाला मार्ग सीधे शाश्वत सुखधाम जन्नत को जाता है। निस्सन्देह व्यक्ति सच बोलता रहता है, बोलता रहता है यहाँ तक कि परमेश्वर के यहाँ वह 'सत्यवादी' बन जाता है। इसी प्रकार झूठ ऐसा आचरण है जो बुराई के मार्ग पर चलाता है और बुराईवाला मार्ग सीधे नरक को जाता है और निस्सन्देह जब कोई व्यक्ति झूठ की आदत डाल लेता है, वह झूठ बोलता रहता है, बोलता रहता है यहाँ तक कि वह परमेश्वर के यहाँ महाझूठा लिख दिया जाता है।"

(हदीसशास्त्र : मुस्लिम)

महाभारत के शब्दों में सारतः कह सकते हैं कि—

सत्याद् धर्मो दमश्चैव सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।

(12/199/65)

"धर्म और इन्द्रिय-संयम की सिद्धि भी सत्य से ही होती है। सत्य के ही आधार पर सब कुछ टिका हुआ है।"

अतः जहाँ सत्य है वहाँ अहिंसा है और जहाँ अहिंसा होगी वहाँ सत्य अवश्य होगा। यही कारण है कि जितने भी अपने संघर्ष में सफल अहिंसावादी महापुरुष हुए हैं, वे अहिंसाव्रती होने के साथ-साथ अत्यन्त सत्यवादी एवं सत्यनिष्ठ भी थे। जहाँ वे अपने मन, वचन और कर्म से किसी

भी प्रकार की तकलीफ़ किसी मनुष्य को नहीं पहुँचने देते थे, वहीं वे बिना भेदभाव के दोटूक न्यायकर्ता, सत्यपरायण और सच्चाई की नीति पर सुदृढ़ भी होते थे। इसके साथ ही वे मानवमात्र से प्यार करनेवाले मानवतावादी और विश्वबंधुत्व के याचक होते थे। उनका हृदय कपट और झूठ से नितान्त पवित्र और मानव-प्रेम से परिपूर्ण होता था। ऐसा कभी नहीं हुआ और न ही कोई ऐसा उदाहरण उनके चरित्र का पेश किया जा सकता है कि उन्होंने मानव-समुदायों के मध्य कपटाचारपूर्ण कभी कोई ऐसी नीति अपनाई हो कि समुदाय आपस में टकराने लगे हों या किसी विरोधी समुदाय के विरुद्ध कभी कोई ऐसा द्वेषपूर्ण षड्यंत्र रचा हो कि विरोधी समुदाय के विरुद्ध लोग उत्तेजित हो उठे हों। अहिंसावादी तो अत्यन्त भोले-भाले और उदारचित्त होते हैं। उनकी उदारता और भोलेपन के कारण कुछ लोग उनको मूर्ख होने की भूल कर बैठते हैं और अपना बड़े-बड़े नुक़सान कर जाते हैं। सत्य यह है कि अहिंसावादी अत्यन्त बुद्धिमान और तत्वदर्शी होते हैं। मूर्खता और संकीर्णता का उनसे दूर का भी नाता नहीं होता। अवसर आने पर उनकी बुद्धिमत्ता और तत्वदर्शिता देखते बनती है।

निर्मल मन और परोपकार का दूसरा नाम अहिंसा है

अतः किसी भी अहिंसावादी का आचरण मानवहित के विरुद्ध कदापि नहीं देखा गया। अहिंसावादी अपने शत्रु और शत्रु-समुदायों के प्रति भी हित-चिन्तन किया करते हैं और जहाँ आवश्यकता पेश आती है तो अपनी क़ुरबानी भी उनके लिए दे दिया करते हैं। अहिंसा पर चलनेवाले पुरुषों का प्रथम लक्षण ही यही होता है कि वे समदर्शी होते हैं और समदर्शी का अर्थ होता है कि समस्त मानव को एक समान दृष्टि से देखना और प्रत्येक मानव के साथ मित्रवत व्यवहार करना। दूसरे शब्दों में अगर कहा जाए तो यह सत्य होगा कि उनके लिए न कोई शत्रु होता और न ही कोई उनसे विलग होता है। वे सम्पूर्ण सृष्टि में किसी के प्रति भी भेदभाव नहीं रखते। उनके स्वभाव को अनुराग सागर में व्यक्त किया गया है। कहा गया—

रहें अजाँच न जाचें काहू। को राजा को परजा साहू।।

अर्थात् वे कभी नहीं देखते कि कौन राजा और कौन प्रजा है। वे सभी के प्रति समान रूप से आदर-भाव रखते हैं। उनका दूसरा लक्षण होता है कि वे अत्यन्त सहनशील होते हैं और सहनशीलता ही है जो उन्हें अहिंसावादी बनाए रखती है। सहनशीलता अपने आपमें एक महान तप है। अतः अहिंसावादी महानतपस्वी होते हैं। यही कारण है कि अहिंसा पर चलनेवाले— क्रोध-स्वभाव के नहीं, बल्कि अत्यन्त शान्त-स्वभाव के होते हैं और शान्त-स्वभाव के होने के कारण उनकी बुद्धि ठीक ढंग से कार्य करती होती है और उनके कार्य एवं कर्म न्यायपूर्ण, सत्य-युक्त होते हैं। इसी प्रकार अहिंसावादी लोग अत्यन्त करुणामय होते हैं। उनका हृदय करुणा और प्रेम से भरा हुआ होता है। वे ईर्ष्या और जलन जैसे दुर्गुणों से बहुत दूर होते हैं। उनका मन सभी के प्रति अत्यन्त निर्मल और विशुद्ध होता है। वे सदैव लोक-कल्याण और लोक-हितों के बारे में ही सोचते रहते हैं। वे निःस्वार्थ दूसरों की भलाई के कामों में लगे रहते हैं। अतः वे निःस्वार्थ और निष्काम-भाव से अपने सभी कार्य करते हैं। उनपर पाप औरं किसी दोष का अंश नहीं रहता। श्रीमद्भगवद् गीता कहती है—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोतियः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।

(5/10)

"जो सब कर्मों को परमात्मा में समर्पित करके, आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता।"

कहा जा सकता है कि अहिंसा का फलरूप परोपकार, लोक-कल्याण, जनसेवा, परमार्थ, लोकहित आदि आचरण है और यही अहिंसावादियों का धर्म और परम धर्म है। रामचरित मानस से भी इस तथ्य की पुष्टि इस प्रकार होती है। बालकाण्ड में है कि देवतागण कामदेव से जितकाम श्री शिव जी में कामवासना पैदा करने हेतु उनके निकट जाने के लिए प्रार्थना करते हैं। कामदेव देवताओं के उस काम के करने में अपना अनिष्ट होने की आशंका व्यक्त करते हैं, लेकिन फिर भी उनके उस काम को करने के लिए कामदेव

तैयार हो जाते हैं, यह कहते हुए कि—

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा।
श्रुति कह परम धरम उपकारा।।
परहित लागि तजई जो देही।
संतत संत प्रसंसहिं जेही।।

(बालकाण्ड 84/1)

"फिर भी मैं तुम्हारा काम तो करूँगा, क्योंकि वेद दूसरे के उपकार को परम धर्म कहते हैं। जो दूसरे के हित के लिए अपना शरीर त्याग देता है, संत सदा उसकी बड़ाई करते हैं।"

त्याग एवं निस्स्वार्थ भाव के साथ दूसरों का हित करना, और दूसरों का भला चाहना—चाहे कोई अपना हो या पराया—एक ऐसा गुण होता है कि रामचरित मानस में कहा गया है—

परहित बस जिन्ह के मन माही।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाही।।

(अरण्य॰ 31/5)

अर्थात् "जिनके मन में दूसरे का हित बसता है (समाया रहता है), उनके लिए जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।"

यथार्थतः जो लोग निस्स्वार्थ परोपकारी और जनसेवक होते हैं, वे कल्याण के मूर्तरूप होते हैं और उन्हीं के आचरण को धर्मानुकूल कहा जा सकता है। रामायण की दृष्टि में परोपकार और दूसरों का निष्पक्ष हित चाहना ही परम् धर्म है और दूसरों को दुख पहुँचाना, पीड़ा देना सबसे अधम एवं निकृष्ट कर्म है अर्थात् सबसे बड़ा अधर्म है।

उत्तरकाण्ड में है कि भरत जी के एक प्रश्न के उत्तर में श्री रामचन्द्र जी ने कहा—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
निर्नय सकल पुरान बेद कर।
कहेऊँ तात जानहिं कोबिद नर।।

(41/1)

अर्थात् "हे भाई! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुख पहुँचाने के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। हे तात! समस्त पुराणों और वेदों का यह निर्णय (निश्चित सिद्धान्त) मैंने तुमसे कहा है, इस बात को ज्ञानीजन जानते हैं।"

श्रीराम चन्द्र जी के उपरोक्त वचनों से यह भी भाव व्यक्त होता है कि यदि जनसेवा या जनहित के कार्यों का अवसर आ पड़े, तो बिना झिझक उसमें अपनी भागीदारी निभानी चाहिए और यही धर्म है। जिस धर्म के लोगों में मानव-प्रेम, मानव-स्नेह, मानव-कल्याण और मनुष्य के सम्मान की भावना का अभाव है और दूसरों को पीड़ित देखकर हर्षित होने एवं पीड़ा देनेवाले कुकृत्य विद्यमान हैं, वस्तुतः वे कुधर्म पर हैं, अधमता एवं दुष्टता के मार्ग पर हैं। आदर्श श्रीराम चन्द्र जी ही नहीं, बल्कि किसी भी महापुरुष या धर्म-ग्रंथ को उठाकर देख लिया जाए सभी यही बात कहते दिखाई देते हैं।

पुराणों एवं वेद के संग्राहक वेदव्यास जी की शिक्षाओं का सारांश भी यही उल्लेख किया जाता है कि–

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

अर्थात् महर्षि वेदव्यास जी ने अठारह पुराणों में दो विशिष्ट बातें कही हैं–

पहली बात : परोपकार करना पुण्य यानी धर्म है और

दूसरी बात : पाप यानी कुधर्म का अर्थ होता है दूसरों को दुख पहुँचाना।

निष्कर्ष

अतः किसी को भी, विशेषकर मनुष्य को हमारे मन, वचन और कर्म से दुख न पहुँचाना ही अहिंसा है और दूसरों को तकलीफ़ और कष्ट में डालना ही हिंसा है। हमें इस पर गम्भीर होना चाहिए। इसी के बाद हम मानव और धार्मिक पुरुष कहलाने के पात्र हो सकते हैं।

इस सन्दर्भ में सत्य और वास्तविक तथ्य एवं परम धर्म को समझने की ईश्वर हमें सामर्थ्य प्रदान करे। आमीन!!!

■■

संकेत-विवरण

ऋ॰	=	ऋग्वेद
शान्ति॰	=	महाभारत का शान्ति पर्व
मनु॰	=	मनुस्मृति
महाभा॰	=	महाभारत
अथर्व॰	=	अथर्ववेद
यजु॰	=	यजुर्वेद
सभा॰	=	महाभारत का सभा पर्व
आदि॰	=	महाभारत का आदि पर्व
बृह॰	=	बृहदारण्यकोपनिषद
विराट॰	=	महाभारत का विराट पर्व
अनु॰	=	महाभारत का अनुशासन पर्व
वन॰	=	महाभारत का वन पर्व
उ॰का॰	=	रामायण का उत्तरकाण्ड
उत्पत्ति	=	बाइबल की उत्पत्ति पुस्तिका
सूरा॰	=	क़ुरआन की सूरह या अध्याय
भविष्य॰	=	भविष्य महापुराण
प्रका॰	=	प्रकाशन या प्रकाशक
बुखारी॰	=	मुहम्मद-बिन-इस्माईल बुखारी द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
मुस्लिम॰	=	मुस्लिम-बिन-हज्जाज द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
निसाई॰	=	अहमद-बिन-शुऐब निसाई द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
अबू दाऊद या अबी दाऊद	=	सुलैमान-बिन-अल-अशअख अल-सजिस्तानी द्वारा संकलित हदीसशास्त्र

तिर्मिज़ी	= अबू ईसा मुहम्मद-बिन-सूरह-बिन शद्दाद तिर्मिज़ी द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
इब्ने माज़ा॰	= अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद-बिन-यज़ीद इब्ने माज़ा अल-रबई अल-क़ज़्वीनी द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
मुवत्ता इमाम मालिक	= मालिक बिन अनस बिन मालिक-बिन-उमर द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
मुस्नद अहमद	= इमाम अहमद-बिन-हम्बल द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
दारमी	= अब्दुर्रहमान दारमी द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
हाकिम	= इमाम अबू-अब्दुल्लाह मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह हाकिम नीशापुरी द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
तिबरानी	= अबू-अल-क़ासिम इमाम तिबरानी द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
मिश्कात	= मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह (उपाधि : वलीउद्दीन) द्वारा संकलित हदीसशास्त्र
अल-अदबुल-मुफ़रद	= इमाम मुहम्मद बिन इस्माई बुखारी द्वारा रचित पुस्तक